ॐ ओ३म्

ानन्द कथा-माला—३

नगवान्

शंकर और दयानन्द

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी की
आध्यात्मिक और रोचक कथा

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

प्रकाशक :
गोविन्दराम हासानन्द
आर्य साहित्य भवन,
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

प्रवचनकर्त्ता—श्री महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती
संकलनकर्त्ता—श्री रणबीर जी, 'उर्दू मिलाप'

मूल्य : दो रुपये

नवम संस्करण : अप्रैल, १६७६

प्रस्तावना

पूज्य महात्मा श्री आनन्द स्वामी जी महाराज (पूर्व महाशय खुशहालचन्द जी खुर्सन्द) संन्यासाश्रम में प्रवेश के पश्चात् हृषिकेश, गंगोत्तरी आदि की शान्त कुटियों में एकान्तवास करके स्वाध्याय तथा योगाभ्यास और तपस्या से अपने विचारों को परिपक्व करने के बाद प्रत्येक वर्ष कुछ मास सांसारिक मुमुक्षुओं को अपने अमृतमय उपदेश से तृप्त करते रहते हैं। महात्मा जी के उपदेशों में अमृतरस की वर्षा के साथ-साथ आनन्द और ज्ञान दोनों की उपलब्धि होती है। यही कारण है कि उनकी प्रथम कथा 'आनन्द गायत्री कथा' के कई संस्करण अल्प समय में समाप्त हो गये। तथा—

'एक ही रास्ता' नामक दूसरी कथा में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन-रूप उपदेश है। वह भी हाथों-हाथ बिक रही है। इसी से प्रोत्साहित होकर यह तीसरी कथा—

'भगवान् शंकर और दयानन्द' जिसमें वेद, वेदान्त और ओंकार की व्याख्या सर्वथा मनन करने योग्य है, प्रत्येक धर्मानुयायी के लिए पठनीय और उपदेशप्रद है। आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि पहले की दोनों कथाओं के तुल्य इसका भी उचित प्रचार होगा।

उर्दू 'मिलाप' के अधिष्ठाता श्री रणवीर जी का आभार मानते हैं, जिनके उर्दू लेखों से यह अनुवाद किया गया है। साथ में श्री विद्यार्थी जगदीश जी (अब स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती) के प्रति भी हम कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं जिन्होंने परिश्रम करके अति शीघ्र यह अनुवाद कर दिया है।

विशेष कृतज्ञता तो महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज के प्रति प्रकट करता हूँ कि वे ऐसे उत्तम उपदेश देकर सांसारिक मुमुक्षुओं को उपकृत करते हैं।

—गोविन्दराम हासानन्द

पहला दिन

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।।

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

परमात्मा की अपार कृपा है कि एक बार फिर आपसे कुछ बातें करने का अवसर प्राप्त हुआ है । पिछले कई वर्षों से संसार में उथल-पुथल मच रही है । कुछ व्यक्ति इस बात से दु:खित हैं कि सन् १९५७ में प्रलय आयेगी, परन्तु सन् १९५७ से भयभीत होनेवाले क्या यह नहीं देख सकते कि प्रलय निरन्तर चली आ रही है ? छ: सहस्र वर्ष से संसार की दशा बिगड़नी आरम्भ हुई, इससे पूर्व कुछ शान्ति थी । परन्तु महाभारत से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व शान्ति का अन्त होने लगा । इस अशान्ति का परिणाम था महाभारत, परन्तु महाभारत से भी शान्ति तो न हुई ! युद्ध से शान्ति कभी होती भी नहीं । दशा बिगड़ती चली जा रही है ।

विदुर एक दिन महाराज धृतराष्ट्र के पास गये । धृतराष्ट्र बोले, "यह क्या हो गया है दुनिया को ?" विदुर ने कहा, "राजन् ! मोह के वशीभूत होकर मनुष्य लोभ, क्रोध और भय से पागल हुआ जाता है, चिन्ता की आग में जला जाता है । जब तक वह लोभ, क्रोध और भय से मुक्ति नहीं पायेगा, चिन्ता की अग्नि समाप्त नहीं होगी ।"

एक कहानी सुनाई विदुर ने, "एक था घना जंगल । उसमें कितने ही विषैले और भयंकर जीव-जन्तु चिल्लाते फिरते थे—सिंह और हाथी, सर्प और अजगर, चीते और रीछ । महान् अन्धकार था उसके अन्दर । भागता हुआ एक व्यक्ति उसके निकट आया । एक बहुत बड़े शरीर वाली भयानक स्त्री को उसने वहाँ देखा । वहीं पाँच विषैले सर्प देखे । वह भय के कारण भागा और काँपता-हाँपता जंगल

में दौड़ता चला गया। अँधेरे में एक तालाब में जा गिरा। परन्तु इससे पूर्व कि वह तालाब की उस तह में पहुँचता जहाँ पानी नहीं था, किनारे पर लगे एक वृक्ष की शाखा उसके हाथ में आ गई। उससे लटक गया वह। जब कुछ होश आया तो उसने देखा कि नीचे गहरे तालाब की तह में एक भयानक साँप फन फैलाये बैठा है। उसकी आँखें अंगारों की भाँति चमक रही हैं। ऊपर देखा कि छः मुख वाला हाथी उस वृक्ष को गिराने का प्रयत्न कर रहा है, जिसकी शाखा से वह चिपटा हुआ था। उसने यह भी देखा कि श्वेत और काले रंग के चूहे वृक्ष की शाखा को काट रहे हैं। ऊपर मृत्यु, नीचे मृत्यु। भय से उसका रोम-रोम काँप उठा। परन्तु तभी वृक्ष की दूसरी शाखा पर लगे शहद के छत्ते से बूँद-बूँद करके शहद चूने लगा और उसके होंठों पर गिरने लगा। उसने शहद को चक्खा। उसके स्वाद में खो गया। भूल गया नीचे के सर्प को, छः मुखवाले उस हाथी को जो ऊपर चिंघाड़ रहा था, उन श्वेत और काले चूहों को जो शाखा को काट रहे थे, उस जंगल में चिल्लाते हुए सिंहों को, फुंकारते हुए अजगरों को, शोर मचाते हुए पशुओं को। उस व्यक्ति की भाँति है यह मनुष्य। शाखा से लटका हुआ, शहद के स्वाद में सब-कुछ भूला हुआ है।"

ठास में खो गया है। नीचे की मृत्यु और ऊपर का महानाश उसे ृष्टिगोचर नहीं होते।"

यह है आज से पाँच सहस्र वर्ष पूर्व का दृश्य, जिसे देखकर प्रश्न ाग उठा—मनुष्य क्या करे ?

आज से दो हज़ार पाँच सौ वर्ष पूर्व एक अर्थी को कुछ लोग ठाये लिये जाते थे। एक नवयुवक ने इनको देखा। आश्चर्य से पूछा, 'क्या है यह ? कैसी वस्तु है जो आठ पाँव से चलती है ?" उसके ारथि ने कहा, "अर्थी है यह। एक व्यक्ति मर गया, उसको जलाने के लिए ये लोग लिये जाते हैं।" नवयुवक का नाम था राजकुमार सिद्धार्थ। बाद में संसार ने इन्हें शाक्य मुनि गौतम और बुद्ध भी कहा। आश्चर्य से वह बोला, "क्या प्रत्येक व्यक्ति को मरना पड़ता है ?" सारथि बोला, "हाँ राजकुमार ! प्रत्येक व्यक्ति को अन्त में मरना है, मरने के पश्चात् मनुष्य को जलाया जाना भी है।" राजकुमार ने भयभीत होकर कहा, "क्या मुझे भी मरना होगा ? क्या मुझे भी जलाया जायेगा ?" सारथि बोला, "अन्त तो ऐसा ही होगा, अन्त में तो सबको मरना है।" आगे जाकर राजकुमार ने एक पशु को देखा, एक दीन भिखारी को, एक बूढ़ी स्त्री को देखा जो लाठी टेककर चलती थी। एक निर्धन व्यक्ति को देखा जो सर्दी से ठिठुरा जाता था। उसका हृदय चिल्ला उठा, "यह सब-कुछ यदि है तो मनुष्य क्या करे ?" इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए वह एक वृक्ष के नीचे जा बैठा; तब तक नहीं उठा जब तक उसे अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिल गया।

और आज से दो सहस्र एक सौ वर्ष पूर्व एक और बालक ने भी वे दृश्य देखे। उसकी आयु केवल आठ वर्ष थी। उसका हृदय भी चिल्ला उठा, "मनुष्य क्या करे ?" केरल प्रान्त के अलवाई रेलवे-स्टेशन से परे कालपी नाम का एक ग्राम है। उस ग्राम में अलवाई नदी के किनारे उसका घर था। मालाबार में जब दंगा हुआ और पूज्य महात्मा हंसराज की आज्ञा से मैं वहाँ पीड़ित लोगों की सहायता

के लिए गया तो उस गाँव को देखा। उस अलवाई नदी को भी जिसके किनारे आठ वर्ष के उस बालक ने एक चिता को जलते था, एक बूढ़े को लड़खड़ाते हुए देखा था, एक रोगी को कराहते देखा था। सबको देखकर उसका हृदय चिल्ला उठा, "यह क्या क्यों है ? मनुष्य क्या करे ?" उस बालक का नाम था शंकर। में संसार ने उसे जगद्‌गुरु शंकराचार्य कहा।

लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व पश्चिम भारत के डेमी नदी के कि टंकारा नामक ग्राम में एक और बालक उत्पन्न हुआ। उसका भी शंकर था। शिवरात्रि के दिन प्रातः से सायंकाल तक व्रत रख वह बैठा रहा। सोचता रहा, आज रात को भगवान् शिव के द होंगे। रात्रि आई। सब लोग सो गये। रात्रि के तीसरे पहर उ देखा कि एक चूहा शिव के ऊपर चढ़े मिष्ठान्न को आनन्दपूर्वक रहा है, तो उसके मन के भीतर कोई चिल्ला उठा, 'ये तो भगव शिव शंकर नहीं हैं। ये तो कैलासपति नहीं हैं।' तब कुछ दिन पश्चात् उसकी बहन मर गई। लोग रोये। मूलशंकर चुप खड़ा रह पूछा, "इसको क्या हो गया है ?" लोगों ने बताया, "मर गई है य मौत ले गई है इसको।" मूलशंकर ने आश्चर्य से पूछा, "क्या सब मरना पड़ता है ?" उत्तर मिला, "सबको।" तभी कुछ दिनों पश्चात् उसके चाचा की मृत्यु हो गई; मौत उसके एक और प्य को ले गई। मूलशंकर के आँसुओं का बाँध टूट गया। चुप कराते, चुप न होता; बार-बार सोचता, 'मैं ऐसे संसार में नहीं रहूँगा ज शिव नहीं हैं, जहाँ जीवन का अन्त मृत्यु है।' वैराग्य का वेग ज उठा हृदय के अन्दर। सम्बन्धियों ने सोचा, 'इसका विवाह करा वह आयेगी तो वैराग्य को भूल जायेगा।' विवाह की तैयारियाँ ह लगीं। मूलशंकर के हृदय में भूकम्प आने लगा। तब एक रात उस स्वप्न देखा कि एक महान् ज्योति उसके पास आकर कह रही "सच्चे शिव की तलाश करनी है और मृत्यु पर विजय प्राप्त क है तो घर से निकल, उन लोगों के पास पहुँच जिन्होंने मृत्यु पर वज

पाई।" उससे अगली प्रात: यह बालक घर में नहीं था। घोर तप, न थकनेवाली खोज के मार्ग पर चल पड़ा था, जिसने उसे महर्षि दयानन्द बना दिया।

एक सहस्र दो सौ वर्ष पूर्व के शंकर ने अपनी माँ से कहा, "मैं साधु बन जाऊँगा, संन्यास लूँगा।" ममताभरी माँ ने चिल्लाकर कहा, "यह कैसे हो सकता है? अभी तू बच्चा है। अभी तू बड़ा होगा। तेरा विवाह करूँगी, बाजे बजेंगे।" शंकर ने कहा, "नहीं माँ! यह सब-कुछ मुझे करना नहीं। मुझे एक और कार्य करना है, आज्ञा दो।" माँ नहीं मानी तो शंकर बोले, "अच्छा माँ! चल नदी पर नहाने चलें। मैं नहाऊँगा, तू देखना।" नदी के किनारे पहुँचकर माँ ने कहा, "बहुत आगे नहीं जाना, पानी अधिक है।" शंकर कपड़े उतारकर नहाते हुए आगे बढ़े, तभी शोर मचा दिया, "माँ! मुझे मगरमच्छ ने पकड़ लिया है, वह मुझे खींचे लिये जा रहा है। तेरा पुत्र अब समाप्त हुआ।" वीरान किनारे पर माँ चिल्ला उठी, "हाय-हाय, मैं क्या करूँ?" शंकर पानी में खड़े-खड़े बोले, "माँ! मगरमच्छ एक बात कहता है, बोलता है कि यदि तू संन्यासी हो जाये तो मैं तुझे छोड़ दूँगा।" माँ ने घबराकर कहा, "ऐसी बात न कह! इसे कह, तुझे छोड़ दे।" शंकर बोले, "वह मुझे घसीटे लिये जाता है। तू यदि आज्ञा दे तो मैं इसे संन्यासी होने का वचन दे दूँ।" माँ ने रोते हुए कहा, "मैं वचन देती हूँ।" शंकर बोले, "वह अभी संन्यासी होने की बात कहता है।" माँ ने कहा, "अभी हो जाना, इसे कह, तुझे छोड़ तो दे।" और इस प्रकार आज्ञा लेकर शंकर संन्यासी हुए। आठ वर्ष की आयु में नर्मदा के तट पर स्वामी गोविन्दानन्द से उन्होंने दीक्षा ली। स्वामी दयानन्द भी घर से निकलकर वहीं पहुँचे।

आनेवाले दिनों में जो बात मैं आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ उसका विषय है, "शंकराचार्य और ऋषि दयानन्द की आध्यात्मिक कथा।" वे दोनों संन्यासी थे। दोनों सत्य की खोज में घर से निकले। दोनों ने छोटी आयु में घर के सुख को त्याग दिया। दोनों ने विवाह

नहीं कराया। दोनों ने अपने-अपने समय की आवश्यकता को पूरा किया। शंकर जब उत्पन्न हुए तो चारों ओर घोर नास्तिकता और वाममार्ग फैल रहा था। इनसे लड़ने के लिए उन्होंने देश-भर का भ्रमण किया। स्थान-स्थान पर जाकर शास्त्रार्थ किये। उपनिषदों के भाष्य लिखे, कई अन्य ग्रन्थ भी लिखे। महर्षि दयानन्द ने भी संन्यास लेकर तप किया। ओखी मठ, जोशी मठ, उत्तर काशी और गंगोत्तरी में पहुँचकर पहाड़ों की गुफाओं में, नदियों के किनारे, घनघोर जंगलों में इतना घोर तप किया उन्होंने कि एक महान् ज्योति उनके हृदय जाग उठी। तिब्बत की सीमा के उस पार गंगोत्तरी के रास्ते में रत का अन्तिम ग्राम है घराली। वहाँ के नम्बरदार ठाकुर नारायण-ह ने मुझे बताया कि उनके पिता ठाकुर शिवसिंह ने स्वामी दयानन्द । देखा था। घराली के निकट ही गंगा के किनारे एक गुफा में वे रहते थे। उस गुफा में मैं गया। महर्षि ने वहाँ कई-कई मास की समाधि लगाई। कितना घोर तप था वह! शंकराचार्य ने भी तप किया, दोनों ने विद्या प्राप्त की। दोनों ने नास्तिकता के विरुद्ध प्रचार किया। दोनों ने हिमालय से कन्याकुमारी तक देश की बार-बार यात्रा की। दोनों ने वेद-प्रचार और वाममार्ग के संहार के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया।

यही नहीं, दोनों के जीवन में और भी कितनी ही एक-जैसी बातें हैं। जगद्गुरु शंकराचार्य केवल १० वर्ष कार्य कर सके। २२ वर्ष की आयु में कार्य आरम्भ किया, ३२ वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। महर्षि दयानन्द को भी कार्य करने के लिए लगभग इतना ही समय मिला। जगद्गुरु शंकराचार्य की मृत्यु विष से हुई। दो जैनी साधु उनके शिष्य बने। उनके मन में पाप था। अवसर पाकर विश्वासघात किया। उन्होंने शंकराचार्य को विष दे दिया। छः मास वे विष की अग्नि से लड़ते रहे। अन्त में चल बसे।

महर्षि दयानन्द को भी जोधपुर में विष दिया गया। एक बार नहीं, बार-बार उन्हें समाप्त करने का यत्न किया गया। प्रयत्न करनेवाले

वे लोग थे जिनकी दुकानदारी को महर्षि दयानन्द समाप्त किये देते थे। अन्तिम बार का विष बहुत भयानक था। महर्षि का सारा शरीर छलनी हो गया। पर्याप्त समय तक साम्मुख्य करने के पश्चात् एक दिन वे चल बसे। शंकर ने वेद का प्रसार किया, दयानन्द ने भी। शंकर ने भी शास्त्रार्थ किये, दयानन्द ने भी। शंकर ने भी थोड़े-से समय में कितनी पुस्तकें लिख डालीं, दयानन्द ने भी। एक आश्चर्य-जनक समानता उनके जीवन में मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बारह सौ वर्ष पहले के शंकराचार्य अपने समय के दयानन्द थे और डेढ़ सौ वर्ष पहले के दयानन्द अपने समय के शंकराचार्य। अपने-अपने समय पर अपनी-अपनी बुद्धि से उन्होंने उन समस्याओं को सुलझाया जो देश और मानवों के समक्ष थीं। शंकर के समय में नास्तिकता और वाममार्ग के साथ लड़ने की आवश्यकता थी, वे लड़े। दयानन्द के समय नास्तिकता और वाममार्ग के साथ-साथ विदेशी सभ्यता का भी आक्रमण हो रहा था। वे तीनों के विरुद्ध लड़े।

और वास्तविकता यह है कि पाँच सहस्र वर्ष पहले की बात हो या ढाई सहस्र वर्ष पूर्व की, बारह सौ वर्ष पहले की बात हो या डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की, यह लड़ाई कभी रुकती नहीं। उस समय भी दुनिया दुःखी थी, आज भी दुःखी है। आज किसी भी घर में, परिवार में, प्रान्त में या देश में जाकर किसी से पूछिये, क्या कोई सुखी है ? क्या कोई छाती पर हाथ रखकर यह कह सकता है, मुझे कोई चिन्ता नहीं, कोई भय नहीं ? पाँच सहस्र वर्ष पूर्व महात्मा विदुर ने कहा था, "दुनिया भय, लोभ और क्रोध से पागल हुई जाती है।" क्या आज भी वही बात दृष्टिगोचर नहीं होती ? अमरीका रूस से डरता है, रूस अमरीका से। अमरीका लोभ करता है संयुक्त देश मेरे साथ मिल जायें, रूस लोभ करता है मेरे साथ सम्मिलित हो जायें। लोभ पूरा नहीं होता और आज तक कभी किसी का हुआ नहीं। तब क्रोध जाग उठता है। सब लोग मार्ग पर दौड़े जाते हैं, यह समझकर कि सुख मिलेगा, परन्तु सुख है कहाँ ? सुख तो आत्मा को समझने और जानने में है। शरीर

का रोग कोई रोग नहीं। सबसे बड़ा रोग है आत्मा को भूल जा परन्तु दुनिया समझ बैठी है कि शरीर में सब-कुछ है। यह नहीं कि शरीर तो माया है, पाँच तत्त्व का पुतला, एक मशीन। चल अवश्य है, परन्तु उसे चलाता कौन है? इसके अन्दर आत्मा न हो हज़ार प्रयत्न कीजिये, वह चलती नहीं। संसार भी एक मशीन है इसे चलानेवाला परमात्मा है। वह न हो तो मशीन कुछ भी नहीं।

आप किसी के पिता हैं, किसी के पुत्र हैं, किसी के भाई मजिस्ट्रेट हैं, जज हैं, मन्त्री हैं, व्यापारी हैं, परन्तु तब तक जब त आत्मा शरीर के अन्दर है। यह निकल जाये तो फिर कुछ भी नहीं कैलास की यात्रा के लिए जाते समय तिब्बत में मैंने देखा, कहीं को वृक्ष नहीं। अपने पथ-प्रदर्शक कीचखम्बा से मैंने पूछा, "यहाँ मुर्दे क क्या करते हैं?" वह बोला, "बताऊँगा दूसरे दिन।" एक ऊँचे टीले के ऊपर एक कमरे का एक मकान बना हुआ था। कीचखम्बा ने बताया "यह है श्मशान। इस मकान में पुजारी रहते हैं। कोई मर जाये त रिश्तेदार लाश को यहाँ ले आते हैं। पुजारी तलवार से उसके टुकड़े टुकड़े कर देते हैं, तब शंख बजाते हैं। शंख की ध्वनि सुनकर हज़ारों मांस-भक्षी पक्षी आते हैं। थोड़ी ही देर में वे सब टुकड़ों को खा जाते हैं।" यह है शरीर का मूल्य! जिसके कारण शरीर का मान है उसे दुनिया भूल गई, केवल शरीर को पालना आरम्भ कर दिया उसने। शरीर को खाना खिलाया उसने, आत्मा को नहीं। अरे याद रक्खो! जब तक आत्मा भूखी है तब तक हज़ार योजनाएँ बनाओ, शान्ति नहीं होगी। मैं यह नहीं कहता कि शरीर की चिन्ता न करो। शरीर तो आत्मा की मोटर है। इसमें तेल अवश्य डालो ताकि यह चलती रहे, परन्तु जो मोटर को चलाता है उसकी भी तो चिन्ता करो! उसे खिलाओगे नहीं, उसे भूखा मारोगे तो इस मोटर का क्या लाभ होगा? तुम्हें पतलून की चिन्ता है, फटे हुए अन्तःकरण की चिन्ता नहीं? बाहरवाले को सजाये चले जा रहे हो। अरे, अन्दरवाले को भी तो सजाओ! वास्तविकता वह है, बाहर की प्रदर्शनी नहीं।

अन्दरवाले को जगद्गुरु शंकराचार्य ने देखा, स्वामी दयानन्द ने खा। लोग समझते हैं, उनके सिद्धान्त अलग हैं, ऐसी बात नहीं है। नों का एक सन्देश है और वह यह कि आत्मा को जगाये बिना कार्य हीं चलेगा। श्री शंकर ने अपने सारे ज्ञान का निचोड़ उस ग्रन्थ में लखा है, जिस ग्रन्थ का नाम उन्होंने 'विवेक चूड़ामणि' रक्खा। हर्षि दयानन्द ने अपने ज्ञान का निचोड़ 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' और 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा है। 'विवेक चूड़ामणि' में श्री शंकर कहते हैं, एक दुःखी गृहस्थ ने रोते हुए कहा—इस भयानक संसार में पार जाने का मार्ग क्या है? ज्ञानी ने उत्तर दिया, "रो नहीं, घबरा नहीं। मार्ग है। उसपर जाने के उपाय हैं चार—श्रद्धा, भक्ति, ज्ञान और योग।" महर्षि ने भी 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' के उपासना काण्ड में इन्हीं चार बातों का वर्णन किया—श्रद्धा, भक्ति, ज्ञान और योग। श्री शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र का भाष्य किया है, जिसका पहला सूत्र है—

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा

अब ब्रह्म की खोज आरम्भ होगी। और इसके साथ ही लिखा—ब्रह्म की खोज आरम्भ करने से पूर्व चार वस्तुओं का होना आवश्यक है। पहली यह कि जो व्यक्ति खोज करना चाहता है उसे आत्मा और अनात्मा का पता हो। दूसरी यह कि वह लोक और परलोक के लोभ से वैरागी हो गया है। तीसरी यह कि उसके पास छः प्रकार की सम्पत्ति हो और चौथी यह कि उसके अन्दर मुक्ति पाने की इच्छा हो। यह छः प्रकार की सम्पत्ति है—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान। महर्षि दयानन्द ने इन्हीं चार बातों की चर्चा 'सत्यार्थप्रकाश' में की है। सबसे पहली बात को कहते हैं विवेक। यह जानना कि जड़ क्या है और आत्मा क्या है? यह शरीर जड़ है; जिसके कारण इसके अन्दर जीवन है वह आत्मा है। शरीर का नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता। पाँव की हड्डी टूटती है तो आत्मा की हड्डी नहीं टूटती। शरीर का गला कटता है तो आत्मा का गला

नहीं कटता। स्वामी रामतीर्थ जी ने ठीक कहा है—

ख़ंजर को क्या मजाल[1] कि इक ज़ख़्म[2] कर सके।
तेरा ही है ख़याल[3] कि घायल हुआ है तू ॥

इस बात को जाननेवाले हक़ीक़त ने कहा—

काट सकते हो तो बाहर का हक़ीक़त काटो।
काटती अस्ल हक़ीक़त को यह तलवार नहीं ॥

इस बात को जाननेवाले भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कहा "यह आत्मा कटता नहीं, जलता नहीं, सूखता नहीं, डूबता नहीं।" यह है विवेक, यथार्थ ज्ञान। इस बात को समझना कि आत्मा क्या है, जड़ क्या है।

दूसरी बात को कहते हैं वैराग्य—प्रत्येक प्रकार के फल की इच्छा को त्याग देना, निष्काम भाव से कर्म करते जाना। आजकल तो निष्काम कर्म का अर्थ ही लोग समझ नहीं पाते। लोग सेवा भी करते हैं तो वोट प्राप्त करने के लिए। जहाँ वोट मिलने की आशा न हो, वहाँ उनका सेवा करने को ही जी नहीं चाहता। परन्तु आत्मा की खोज करनी हो तो केवल इस लोक के ही नहीं, परलोक के लोभ को भी त्यागना पड़ता है।

तीसरी बात को कहते हैं षट् सम्पत्ति—छः प्रकार की सम्पत्ति। इनमें पहले प्रकार की सम्पत्ति है शम—प्रत्येक दशा में शान्त रहो। संसार तो शान्त नहीं है। हर ओर उथल-पुथल मच रही है। कितने ही उतार-चढ़ाव होते हैं। बाढ़ें आती हैं, भूकम्प आते हैं, गाँव उजड़ते हैं, शहर नष्ट होते हैं, बच्चे अनाथ होते हैं, विनाश नाच उठता है। इन सब के होते हुए शान्त रहना—यह है शम। तुम्हारे शान्त होने से संसार बदलेगा नहीं। इसी प्रकार चलता जायेगा। विचारकर देखो, यह संसार क्यों बना? इसलिए कि लोग अपने किये कर्मों का फल भोग सकें। नये और उत्तम कर्म करके ईश्वर के पास पहुँच सकें।

---

१. शक्ति, २. घाव, ३. विचार। —अनुवादक

ऐसी दुनिया में पूर्ण शान्ति मिलेगी कैसे ? भगवान् राम को चौदह वर्ष जंगलों में भटकना पड़ा। भगवती सीता को भी रावण की कैद में जाना पड़ा। जब तक शरीर है तब तक सुख और दुःख, पाप और पुण्य, रोग और शोक सबको रहना है। यदि दुःख का अन्त चाहते हो तो केवल एक ही रास्ता है कि अपने कर्म को करते जाओ—शान्त रहो। एक कवि ने कहा था—

या खून पसीना करके बहा, या तान के चादर सोता जा।
यह नाव तो चलती जायेगी, तू हँसता रह या रोता जा॥

तुम्हारे हँसने या रोने से संसार बदलेगा नहीं। केवल अपना कर्त्तव्य पूरा करो और शान्त रहो। इन जलती हुई ज्वालाओं में, दहकते हुए ज्वालामुखियों में डोलने दो संसार का जहाज़। तुम अडोल होकर बैठे रहो। यह है शम, छः सम्पत्तियों में से एक सम्पत्ति। शेष सम्पत्तियों की बात अगले भाषण में बताऊँगा।

ओ३म् शम् !

दूसरा दिन

प्यारी माताओ और सज्जनो !

जगद्गुरु शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द की बात कह रहा था मैं। दोनों ने कहा—

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"

(अब ब्रह्म की खोज आरम्भ होगी) कहने से पूर्व कहनेवाले में चार गुण होने चाहियें। वेदान्त और आत्मिक ज्ञान की भाषा में इन चार गुणों को 'साधन चतुष्टय' कहते हैं। श्री शंकराचार्य ने 'विवेक-

चूड़ामणि' और 'तत्त्वबोध' में और महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' और 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' में इसका वर्णन किया है। कुछ कह सकते हैं कि खोज तो ब्रह्म की करनी है, फिर पहले इन चार गुणों की क्या आवश्यकता है ? क्या कोई व्यक्ति बिना पढ़े-लिखे जाकर कह सकता है कि मुझे इञ्जिनीयरिंग के कॉलेज में प्रविष्ट करके इञ्जिनीयरिंग की, या मैडिकल कॉलिज में प्रविष्ट करके डॉक्टर की डिग्री दे दो ? नहीं, इन कॉलिजों में प्रविष्ट होने से पूर्व कुछ और डिग्रियाँ प्राप्त करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार 'ब्रह्मप्राप्ति' के कॉलिज में प्रविष्ट होने से पूर्व भी चार साधनों को अपनाकर चार गुण अपने अन्दर उत्पन्न करने पड़ते हैं। वे चार गुण हैं आत्मा और अनात्मा का विवेक, लोक और परलोक में कर्म के फल से वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुक्ति की तीव्र इच्छा।

इन चारों गुणों का वर्णन करते हुए जगद्गुरु शंकराचार्य 'विवेक-चूड़ामणि' के ६४वें श्लोक में कहते हैं, "जैसे रोगी पुरुषों का रोग केवल औषध का नाम सुन लेने मात्र से दूर नहीं हो जाता, ऐसे ही भवबन्ध से ब्रह्म का साक्षात् अनुभव किये बिना केवल यह कह देने से कि 'मैं ब्रह्म हूँ' कोई मुक्ति नहीं पा सकता। मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा कहने का अधिकार उस व्यक्ति को है, जिसने इन चारों गुणों को क्रियात्मक रूप देकर परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है।" आगे चलकर एक और स्थान पर उन्होंने कहा है, "सब शत्रुओं को नष्ट किये बिना और सबको विजय किये बिना जैसे कोई व्यक्ति 'मैं राजा हूँ' ऐसा कहने से राजा नहीं हो जाता, उसी प्रकार इस भवसागर से पार उतरे बिना कोई व्यक्ति 'मैं ब्रह्म हूँ' कहने से मुक्त नहीं हो सकता।"

इन चार गुणों की चर्चा मैंने कल की थी। उनमें से 'षट् सम्पत्ति', छ: प्रकार की सम्पत्ति में से पहली के सम्बन्ध में भी कहा था। यह सम्पत्ति है 'शम'—प्रत्येक दशा में अपने-आप को शान्त रखना। सुख में और शान्ति में तो सब व्यक्ति शान्त रहते ही हैं। जब सुख और शान्ति दोनों न हों, चहुँ ओर ज्वालाएँ जल रही हों, उथल-पुथल हो

ही हो, पृथिवी काँपती हो, नौका डगमगाती हो, तूफ़ान चीख़ता करता हो, बाढ़ डराती हो, तब भी शान्त रहना, इसका नाम 'शम' है।

आप कहेंगे—संसार में कौन है जो शान्त रहना नहीं चाहता ? ौन है जो दुःखी होना चाहता है ? कौन है जो भूखा रहना चाहता , निर्धन होना चाहता है, चिन्ता में डूबना चाहता है ? परन्तु जब ह सब-कुछ हो तब व्यक्ति शान्त रहे तो किस प्रकार ? इस प्रश्न ा उत्तर सुनिये। मनुष्य के अन्दर शान्ति तब आती है, जब उसके न्दर मानसिक बल हो। मेरा मन जब मेरा बन जाए तब शम का ण प्रकट होता है अवश्य। आप कहेंगे, मानसिक बल को उत्पन्न रने की विधि क्या है ? वह भी सुनिये। बल को पैदा करने की ाधि है संसार को उसके वास्तविक स्वरूप में समझना। दो प्रकार के त्व हैं संसार में—एक 'आत्मतत्त्व' है ; दूसरा 'अनात्मतत्त्व'—ऐसा त्व जो आत्मा नहीं है, केवल प्रकृति है, माया है, नाश होनेवाला । दोनों को पहचानो। जो नाश होनेवाला है उसका आश्रय न ो। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो सहस्र वर्ष, लाख वर्ष, करोड़ ों के पश्चात् वह समाप्त हो ही जाएगा निश्चित रूप से। तब तुम राश्रय हो जाओगे। और लाख या करोड़ वर्ष की बात क्या, यह प्रतिक्षण परिवर्तित और नष्ट होता है। क्षण-क्षण में रंग-रूप दलता है, वास्तविक नहीं है। पिता समझता है कि वह पुत्र का ाश्रय लेगा, पुत्र समझता है पिता का आश्रय लेगा। दोनों नहीं मझते कि एक दिन पिता रहेगा न पुत्र। एक मनुष्य मित्र का सहारा ता है, दूसरा शक्ति का, तीसरा शासन का। मैं तो यह कहता हूँ माया को अपने स्थान पर समझो, यह ठगिनी है; सदा साथ नहीं ी। सर्वदा साथ देनेवाला वेद के अनुसार परमात्मा है। वेद में ा है—

"प्रजापति ! तुझसे बड़ा संसार में कोई नहीं। जिस कामना को र मैं तुझे बुलाता हूँ उसे पूरा करो। मुझे अनन्त सम्पत्तियों का ामी बनाओ।"

तो मैं नहीं कहता कि धन और शक्ति, शासन और सम्बन्धी बुरे हैं; अच्छे हैं वे। उचित रूप से उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करो, परन्तु उन्हें आश्रय बना लोगे तो अवश्य धोखा खाओगे। वे सदा रहनेवाले नहीं, अन्त में धोखा देते हैं। आश्रय लेना है तो उसका लो जो सदा रहता है, जो कभी धोखा नहीं देता। ये माता और पिता, बेटे और बेटियाँ, सगे और सम्बन्धी कोई भी साथ नहीं जाते। धन और मकान, शासन और जागीर सब यहीं रह जाते हैं। मरते समय प्रत्येक व्यक्ति को यह बात अनुभव होती है। सिकन्दर ने भी कहा था—'मेरे हाथ खोल दो जिससे लोग देखें कि उनमें कुछ नहीं है।' मैंने जीते जी इस बात का अनुभव किया। कैलास की यात्रा में मेरे दस साथी थे—नौ बंगाली, एक मद्रासी। गरबियांग से हम चले तो अपने लिए तम्बू इकट्ठे लिये। पथ-प्रदर्शक लिया। खाने का राशन भी उठा लिया। मैं हँसता हूँ। दूसरों को भी हंसाता हूँ। मेरे वे साथी कहते थे, "आनन्द स्वामी! तेरे साथ रहने में जो आनन्द है, वह हमने कभी देखा नहीं, हम तो अब तेरे साथ ही रहेंगे।" मैंने हँसते हुए कहा, "रहो न, इससे अच्छा क्या है!" परन्तु वापस आती बार मैं बर्फ से गिर पड़ा। लिप्पू लेक घाटी पर बर्फ बहुत थी। पांव फिसला। दूर तक फिसलता गया। बर्फ के एक तोदे ने रोक लिया, नहीं तो आज आपको यह भाषण न सुन पड़ता। कठिनता से उठा परन्तु पांव चिल्ला उठा कि मैं टूट चुका हूँ। उसे घसीटता हुआ 'पंजम' तक पहुँचा। 'पंजम' नगर या ग्राम नहीं, केवल एक खुले वीरान मैदान का नाम है। मेरे बंगाली साथियों ने जब देखा कि यह तो चल नहीं सकता, तो मुझे वहीं छोड़कर चले गये। थोड़ी देर बाद मद्रासी आये, वे भी जल्दी का बहाना करके चले गये। उन्हें गरबियांग पहुँचना था। मैं अकेला रह गया था; चल नहीं सकता था; आस-पास कोई व्यक्ति नहीं था। तभी कीचखम्बा का भाई आया। उसे मैंने कहा कि मैं चल नहीं सकता, कीचखम्बा को बोलो कि या तो झब (तिब्बती बैल) भेजे या कम्बल, जिससे रात्रि व्यतीत कर सकूं।

पर्याप्त रात्रि व्यतीत होने पर कीचखम्बा आया। मुझे साथ लेकर गरवियांग पहुँचा। वहाँ पहुँचकर सुना कि बंगाली और मद्रासी सब आगे चले गये हैं। मैं चल नहीं सकता था। एक दिन पड़ा रहा, दो दिन पड़ा रहा। अन्त में कीचखम्बा ने कहा, "यहाँ कब तक पड़े रहोगे? सर्दी बढ़ती जाती है, कुछ ही दिनों में बर्फ पड़ने लगेगी, मार्ग बन्द हो जायेंगे। एक डाण्डी करा लो, उसमें धारचूला तक चले जाओ, उससे आगे घोड़ा मिल जाएगा।" काफ़ी रुपयों पर एक डाण्डी कर ली गई। छः कुलियों ने उसे उठाया। धारचूला की ओर चले हम लोग। रात्रि हुई तो जंगल में ही एक स्थान पर ठहर गए। देवदार का एक बड़ा वृक्ष था, उसके नीचे मैं लेट गया। मेरे पास कुलियों ने अग्नि जला दी जिससे जंगली पशु न आयें। उसी समय दो कुली नीचे से आये। उन्होंने बताया कि आगे पहाड़ टूट गया है, जाने का मार्ग नहीं; दो साधु टूटे पहाड़ में जाने का प्रयत्न करते हुए मर गए हैं। मेरे कुलियों ने सुना तो बोले, "हम आगे नहीं जायेंगे। मैंने कहा, "अभी तो सो जाओ, प्रातः उठकर देखेंगे कि क्या करना है।" परन्तु जब प्रातः उठा तो देखा, कुलियों का कहीं चिह्न भी नहीं। वे रात के अँधेरे में ही चले गये थे। मैं चकित हुआ कि अब क्या करूं? जलती हुई अग्नि मेरे पास थी। कुली कृपा कर मेरे कमण्डल में पानी भर गये थे। केवल छः बिस्कुट मेरे पास थे। चल मैं सकता नहीं था। नदी भी आधा मील नीचे थी। दिनभर बैठा रहा। रात्रि आ गई। अग्नि में कुछ और लकड़ियाँ डालकर बैठा रहा। दूसरा दिन हो गया। इसी प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गये। तीन रातें व्यतीत हो गई। छः बिस्कुट जो मेरे पास थे, वे भी समाप्त हो गये, पानी भी समाप्त हो गया। मैंने समझा अब मेरा अन्तिम समय आ गया है। उस समय कौन था मेरा! हनुमान रोड वाले, कनॉटप्लेस वाले, किसी आर्यसमाज का मन्त्री, किसी सभा का प्रधान, कोई भी नहीं था, किसी का आश्रय न था। उस समय मेरे हृदय के भीतर से कोई चिल्ला उठा—

किस संग कीजे मित्रता, सब जग चालनहार।
निश्चल केवल है प्रभु, उन संग कीजे प्यार॥

उस समय बेटे नहीं थे, बेटियाँ नहीं थीं, जागीर नहीं थी, व्या
नहीं था, जिस आर्यसमाज के लिए काम किया उसका कोई प्रधान
मन्त्री भी नहीं था। वे बंगाली नहीं थे जिन्होंने कहा था, "आ
स्वामी, तू बहुत अच्छा है।" वे मद्रासी नहीं थे, जो कहते थे, "
तेरे साथ रहेंगे।" कोई नहीं था, केवल प्रभु था एक, उसकी कृपा
तीसरे दिन की सायं कुछ नैपाली कुली आये। उनकी सहायता से
धारचूला पहुँचा।

अरे सावधान! सँभलकर देखो। जिस संसार के पीछे तुम पाग
हुए जाते हो यह किसी के साथ नहीं गया, कभी किसी के साथ जाये
भी नहीं, यह नष्ट होनेवाला है। सदा साथ देनेवाला नहीं है, इस
विश्वास मत करो!

इस प्रकार मन को समझाओगे तो वश में आयेगा। मन वश
आ जाये तो फिर आनन्द भी आयेगा। स्वप्न देखते समय इन्द्रियाँ स
जाती हैं, मन जागता रहता है। मन भी सो जाए तो गाढ़ निद्रा आ
जाती है। केवल आत्मा जागता रहता है। जागकर मनुष्य कहता है
"आज सोने में बहुत आनन्द आया।" अरे! आनन्द किसको आया
तुम तो सो रहे थे! आया उसको जो कभी सोता नहीं, जो सद
जागता है—आत्मा। इस आत्मा को जान लेने से मनुष्य प्रत्येक दश
में शान्त रहता है। यह पहला साधन है। शम का अधिकारी बनने
के लिए मन को वश में करो।

जगद्गुरु शंकराचार्य से उनके शिष्य ने पूछा, "जगत् को कौन
जीत लेता है?" जगद्गुरु बोले, "जो मन को जीत लेता है।"

बहुत बुरा-भला कहा मन को शंकर ने। एक स्थान पर वह कहते
है, "इच्छाओं का एक भयंकर जंगल है जिसमें मन नाम का भयानक
सिंह रहता है। जो लोग आत्मा का दर्शन करना चाहते हैं उन्हें इस
जंगल में नहीं जाना चाहिये।"

कितना है, इसे कुछ लोग समझ नहीं पाते। एक कथा सुनिये ! एक था कृपण, इतना कंजूस कि अपने-आप पर भी धेला खर्च नहीं करता था। लाखों का स्वामी था, फटे कपड़े पहने रहता था। केवल एक अच्छी बात थी उसमें, सत्संग में जाता था। वहाँ भी उसे कोई पूछता न था। सबसे अन्त में जूतों के पास बैठ जाता, कथा सुनता रहता। भोग पड़ने का दिन आया, तो सब भेंट चढ़ाने कोई-न-कोई वस्तु लाये। वह कृपण भी एक मैले-से रूमाल में बांध के कुछ लाया। सब लोग अपनी लाई वस्तु रखते गये, वह भी आगे बढ़ा। अपना रूमाल खोल दिया उसने। उसमें अशर्फियाँ थीं—पौण्ड और सोना। उन्हें पण्डित जी के समक्ष उँडेलकर वह जाने लगा। पण्डित जी ने कहा, "नहीं-नहीं सेठ जी ! वहाँ नहीं, यहाँ मेरे पास बैठो।" सेठ ने बैठते हुए कहा, "यह तो रुपयों का सम्मान है पण्डित जी, मेरा सम्मान तो नहीं।" पण्डित जी ने कहा, "भूलते हो सेठ जी ! रुपया तो तुम्हारे पास पहले भी था। यह तुम्हारे रुपये का नहीं, त्याग का सम्मान है।"

एक और कथा सुनिये ! एक साधु किसी नगरी में रहता, भक्ति के गीत गाता था। लोग उसका सम्मान करते, उसे कितनी ही वस्तुएँ देते। साधु ने अपने शिष्य से कहा, "बेटा, चलो किसी दूसरे नगर में चलें।" शिष्य ने कहा, "नहीं गुरु महाराज, यहाँ चढ़ावा बहुत चढ़ता है, कुछ पैसे जमा हो जायें, फिर चलेंगे।" गुरु ने कहा, "पैसे को जमा करके क्या करेगा ? चल मेरे साथ, पैसा जमा नहीं करना हमें।" चल पड़े दोनों। शिष्य ने कुछ पैसे जमा कर रक्खे थे; उन्हें उसने धोती में बाँध रक्खा था। चलते-चलते मार्ग में नदी पड़ गई। एक नौका वहाँ थी। नौकावाला पार ले-जाने के लिए दो-दो आने माँगता था। साधु के पास पैसे नहीं थे। शिष्य देना नहीं चाहता था। दोनों बैठ गये। दोपहर हो गई, सन्ध्या हो गई, रात हो गई, वे बैठे थे। रात को नाविक अपने घर जाने लगा तो बोला, "बाबा ! तुम यहाँ कब तक बैठे रहोगे ? यह है जंगल, रात को सिंह इस किनारे पर पानी पीने आता है। अन्य जंगली पशु भी आते हैं, वे तुम्हें मार डालेंगे।" शिष्य

ने कहा, "तुम हमें पार ले चलो।" नाविक ने कहा, "मैं तो दो-दो आने लिये बिना नहीं ले-जा सकता।" शिष्य को सिंह के विचार से लगा डर। धोती से चार आने निकालकर बोला, "अच्छा, नहीं मानता तो ले।" नाविक ने चार आने लिये, उन्हें पार ले गया। दूसरे पार जाकर शिष्य ने कहा, "देखा गुरुजी, आप कहते थे पैसा इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं। अब देखिये यदि हमारे पास पैसे न होते तो आज आपत्ति आती कि नहीं?" गुरु ने हँसते हुए कहा, "सोचकर देख बेटा! पैसा एकत्रित करने से तुम्हें सुख नहीं मिला। पैसे को देने से मिला। सुख त्याग में है, एकत्रित करने में नहीं।"

परन्तु त्याग का यह अर्थ नहीं कि कमाना भी बन्द कर दो। वेद कहता है सौ हाथों से कमाओ, पाँच सौ हाथों से खर्च कर दो। जो कमाया है उसपर साँप बनकर न बैठ जाओ। 'जलालपुर जट्टाँ' में एक सज्जन रहते थे। जीवनभर मैंने उन्हें कुर्ता पहनते हुए नहीं देखा। एक बार मैंने पूछा, "श्रीमन्, आप कुर्ता क्यों नहीं पहनते?" वे बोले, "मैं शरीर पर प्रयोग करता हूँ।" जब वह सज्जन मरा तो उसके घर के कई बर्तनों में बन्द किया हुआ धन मिला। इस धन का उसे क्या लाभ हुआ? उसके लिए यह धन इस प्रकार था जैसे पंजाब नेशनल बैंक के चपरासी के लिए बैंक में पड़े हुए लाखों रुपये। न वह उन लाखों रुपयों का प्रयोग कर सकता है, न ये करते हैं। चपरासी उनसे अच्छी दशा में है, क्योंकि वह अपनी ड्यूटी पूरी करने के पश्चात् निश्चिन्त सुख की नींद सोता है; यह अभागा मनुष्य हर समय चिन्ता में डूबा रहता है, सो भी नहीं पाता।

चौथा साधन है सदा ईश्वर को स्मरण रखना, उसके नाम का जाप करना। ऐसा करने से मन ऊपर उठता है, वश में रहता है। कुछ लोग कहते हैं कि क्या ईश्वर के नाम का जाप, ओ३म् का जाप और गायत्री मन्त्र का जाप हर समय हो सकता है? उठते, बैठते, चलते, फिरते भी हो सकता है? मैं कहता हूँ कि अवश्य हो सकता है। ओ३म् हमारी माँ है। गायत्री हमारी माँ है। संसार के अन्दर

अपनी माँ को पुकारते समय क्या हम यह सोचते हैं कि हम किस दशा में हैं ? बच्चा किसी भी दशा में हो, कीचड़ में लथपथ हो या नहा-धोकर अच्छे कपड़े पहने हुए, जब भी वह माँ को बुलायेगा और उसकी पुकार माँ के कानों में पहुँचेगी, तो वह पुकार को सुनेगी अवश्य। बच्चा यदि कीचड़ में लथपथ है, धूल में अटा पड़ा है, तो भी वह उसे उठाकर हृदय से लगा लेगी। ईश्वर हमारी माँ है। उठते, बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते किसी भी समय उसे पुकारना और याद करना ठीक है—

तुलसी अपने राम को, हीज भजो या खीज।
भूमि पड़े उपजेंगे ही, उल्टे-सीधे बीज॥

जो लोग हर समय ईश्वर को याद करते हैं, ईश्वर को अपने सामने मानते हैं, उनके मन में और वाणी में एक महान् शक्ति जाग उठती है। तानसेन के गुरु थे स्वामी हरिदास। अकबर ने एक बार उसका गाना सुना। मोहित हो गया। तानसेन से बोला, "तू ऐसा क्यों नहीं गा सकता ?" तानसेन ने कहा, "मैं गाता हूँ आपके लिए। वे गाते हैं ईश्वर के लिए। मैं आपके दरबार का गवैया, वे हैं ईश्वर के दरबार के गायक। मुझमें और उनमें वही अन्तर है, जो आपके और ईश्वर के दरबार में है।" और जो कुछ तानसेन ने कहा, वह मिथ्या नहीं। जो लोग ईश्वर का नाम लेते हैं, हर समय उसके गुण गाते हैं, उनके मन की दशा दिन-प्रतिदिन ऊपर-से-ऊपर होती चली जाती है। वे सारे परिवार को एक समझने लग जाते हैं; उस अवस्था पर पहुँचते हैं जहाँ वेद प्रत्येक मानव को पहुँचने का सन्देश देता है। वेद कहता है, "तुममें से कोई छोटा या बड़ा नहीं, ईश्वर ने सबको एक-जैसा बनाया है। मिलकर आगे बढ़ो, सौभाग्य और आनन्द के लिए, सुख और शान्ति के लिए।" वेद के इस सन्देश को समस्त संसार यदि सुन सके, यदि इसपर आचरण कर सके तो फिर किसी साम्यवाद और समाजवाद की आवश्यकता नहीं रहती है। वेद कहता है ईश्वर तुम्हारा पिता है, धरती तुम्हारी माता है, तुम सब

भाई-भाई हो। इससे बड़ा साम्यवाद भी कोई हो सकता है? परन्तु यह दशा उत्पन्न होती है उस समय जब मनुष्य हर समय ईश्वर का स्मरण करता है, उसका नाम लेता है, उसके गीत गाता है।

मन के सम्बन्ध में दो बातें और कहनी हैं। एक यह कि मन है क्या? बहुत शोर सुनते हैं इसका। यह कोई राजा या महाराजा नहीं, प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति नहीं, यह तो एक नौकर है, जो भगवान् ने आत्मा को दिया। तुम्हारा मुण्डू है। जड़ है। इसलिए मिला है कि इससे काम लो, इसलिए नहीं कि इसके हाथों में अपनी नकेल दे दो। जब सृष्टि नहीं थी और प्रकृति रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण से रहित, परमाणुओं का विशाल सागर बनके सोई पड़ी थी, तब ईश्वर की प्रेरणा-शक्ति ने इसको कहा, "जाग!" जागी वह। इससे महातत्त्व उत्पन्न हुआ, उससे समष्टि बुद्धि उत्पन्न हुई। तब तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं, मन और बुद्धि और चित्त उत्पन्न हुए। ये सब-के-सब तो प्रकृति के परिवर्तित रूप हैं। प्रकृति है जड़। इसलिए ये सब-के-सब भी जड़ हैं। मन भी जड़ है। इस जड़ वस्तु के पीछे भागते फिरें, इसके संकेतों पर नाचते रहें, तो क्यों? हम तो जड़ नहीं। इसे हमारी इच्छा के अनुकूल चलना चाहिए, हमें इसकी इच्छा के अनुसार नहीं।

दूसरी बात यह है कि मन बनता कैसे है? आकाश या पाताल से नहीं आता। जो अन्न हम खाते हैं उससे मन बनता है। जो कुछ भी हम खाते हैं, शरीर के अन्दर जाकर उसके तीन भाग हो जाते हैं। सबसे ठोस भाग मल बनकर बाहर निकल जाता है। उसके सूक्ष्म भाग से शरीर की शक्ति बनती है। सबसे सूक्ष्म भाग मन बन जाता है। इसीलिए कहते हैं कि जैसा अन्न खाओगे वैसा मन बनेगा। जो व्यक्ति गन्दा-खोटा अन्न खाता है, तो उसका मन कभी अच्छा होगा नहीं। अन्न को जिस भावना से कमाया हो, बनाया हो और तैयार किया हो, सबका प्रभाव मन पर पड़ता है। बूढ़े भीष्म पितामह जब तीरों की शैया पर लेटे थे और धर्म-ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे, तब द्रौपदी ने उनसे कहा, "पितामह! इस समय तो आप बहुत

बड़ी-बड़ी बातें कर रहे हैं, बहुत अच्छी बातें हैं ये ज्ञान की। परन्तु जब दुर्योधन और दुःशासन ने भरे सभाभवन में मेरा अपमान किया, उस समय आपका यह धर्म और ज्ञान कहाँ था?" भीष्म पितामह दुःख के साथ बोले, "तू ठीक कहती है बेटी! उस समय मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। दुर्योधन का पापभरा अन्न मैं खा रहा था। उसने मेरे मन को मलिन कर दिया। अर्जुन के तीरों से रक्त निकला, कई सप्ताह से निकल रहा है, तो उस अन्न का प्रभाव समाप्त हो गया।"

एक साधु रहता था किसी जंगल में। कितने ही लोग उसके दर्शन को जाते। जो भी जाता, उसे शान्ति मिलती। एक दिन उस देश के राजा भी गये। देखा, साधु एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। सर्दी और वर्षा से बचने का कोई प्रबन्ध नहीं है। राजा ने कहा, "महात्मन्, यहाँ बहुत कष्ट होता होगा। आप मेरे साथ चलिये, महल में रहिये।" साधु पहले तो माना नहीं, राजा ने बहुत आग्रह किया तो बोले, "अच्छा चलो।" महल में आये। एक सुन्दर कमरे में ठहरे। हर समय नौकर उपस्थित रहने लगे। अच्छा भोजन मिलने लगा। तीन मास व्यतीत हो गये। राजा उसकी पूजा करते, रानी उसमें श्रद्धा रखती। एक दिन रानी नहाने के लिए स्नानागार में गई। नहाकर उठी तो वह हीरों का हार पहनना भूल गई जो उसने उतारकर स्नानागार में रख दिया था। हार वहीं पड़ा रहा। रानी के पश्चात् साधु स्नानागार में गया, हार को देखा, उठाकर अपनी कौपीन में छुपा लिया। स्नानागार से निकले, महल से बाहर चले गये। कुछ देर बाद रानी को हार का ध्यान आया; दासी से बोली, "स्नानागार में छोड़ आई हूँ, उसे ले आओ।" परन्तु वहाँ तो हार नहीं था। खोज होने लगी। पूछा गया, गुसलखाने में रानी के पश्चात् कौन गया था? पता लगा कि महात्मा गये थे। महात्मा की खोज होने लगी। महात्मा मिले नहीं। राजा को ज्ञात हुआ तो उसने सिपाहियों को आज्ञा दी, "उस साधु के पीछे जाओ। उसे पकड़कर ले आओ।"

इधर वे महात्मा शहर से बाहर निकले। जंगल में चले गये। दिन-भर चलते रहे। पाँव थक गये। भूख भी सताने लगी तो जंगल का एक फल तोड़कर खा गये। फल था एक औषधि, उससे दस्त लग गये। इतने दस्त आये कि महात्मा निर्बल हो गये। तभी उन्हें हार का ध्यान आया। उसे देखते ही बोले, "मैं इसे क्यों उठा लाया? मैंने चोरी क्यों की?" उसी समय वापस चल पड़े। आधी रात के समय राजा के महल पर पहुँचे। आवाज़ दी। राजा जागे। महात्मा ने उसके पास जाकर कहा, "राजन्! आपका यह हार है, ले लो। मैं यहाँ से उठाकर ले गया था। मुझसे अपराध हुआ है, मैं क्षमा माँगने आया हूँ।" राजा ने आश्चर्य से कहा, "वापस ही लाना था तो तुम इसे ले क्यों गये थे?" साधु ने कहा, "राजन्! क्रोध न करना, तीन मास तक मैं तुम्हारा अन्न खाता रहा, उससे मेरा मन पापी हो गया। जंगल में जाकर दस्त आये, शरीर शुद्ध हो गया। तेरे अन्न का प्रभाव समाप्त हो गया। मैंने वास्तविकता को जाना और वापस आ गया।"

यह है अन्न का प्रभाव! इसलिए यूनान के फ़िलॉसफ़र पैथागोरस ने कहा था, "तुम मुझे बताओ कौन आदमी क्या खाता है, मैं तुम्हें बताऊँगा कि वह क्या सोचता है।"

[तभी पूज्य स्वामी जी ने अपनी घड़ी को देखा; बोले—]

हम मन की बात चिल्लाते रहे, यहाँ पूरा घण्टा चला गया अच्छा, बाकी फिर।

ओ३म् शम्!

तीसरा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

पिछले दो भाषणों में हमने पहली बात यह देखी कि जगद्गुरु शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द एक ही मिशन को लेकर आगे बढ़े। दोनों ने मानव को ऊपर उठाने और संसार में शान्ति लाने का साधन ब्रह्मजिज्ञासा को बताया। दोनों ने यह भी बताया कि ब्रह्म को खोजने से पूर्व जिज्ञासु में चार गुण होने चाहियें। इन चार गुणों में से एक गुण है 'षट् सम्पत्ति'। पहली सम्पत्ति का नाम है 'शम'। वह शक्ति कि मनुष्य प्रत्येक दशा में शान्त रहे। प्रत्येक दशा में शान्त रहने के लिए मन को वश में रखना अत्यावश्यक है। मन को वश में रखने के चार साधन मैंने कल बताये। उनमें से एक है संसार की वास्तविकता को समझना; आत्मा क्या है, अनात्मा क्या है, इस बात को जानना। दूसरा साधन है अच्छे विचारों को जगाना। तीसरा साधन है त्याग। चौथा साधन है हर समय ईश्वर को याद रखना, उसके नाम का जाप करना। पाँचवाँ साधन है उत्तम अन्न का सेवन। छठा साधन आज बताऊँगा। जिन लोगों के मन में नित्य चिन्ता रहती है, जो हर समय चिन्ता के सागर में डूबे रहते हैं, वे इस साधन को ध्यानपूर्वक सुनें। साधन यह कि अपनी आवश्यकताओं को कम करो। प्राचीन काल में हमारे पूर्वज कहते थे कि आवश्यकताओं को कम करने से शान्ति होती है। हमने यह समझ रखा है कि आवश्यकताओं को बढ़ाने में ही कल्याण है। पहले हम आवश्यकताओं को बढ़ाते हैं, फिर इन्हें पूरा करने के लिए धन कमाना आरम्भ करते हैं। घर में देवी कमाती है, 'देव' भी कमाता है, फिर भी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं। तब चिन्ताओं के बादल उमड़ आते हैं। हर समय "और लाओ; और लाओ" की पुकार होती रहती है। अरे यह 'मनुवा राम' है न, इसको

ढीला मत छोड़ो! एक बार इसको ढील दोगे तो फिर यह तुमपर छा जायेगा, अमर बेल की भाँति। वृक्ष नहीं बढ़ेगा उस समय, बेल बढ़ेगी। जिस वृक्ष पर अमर बेल छा जाये, वह वृक्ष सूख जाता है। जिस मनुष्य पर मन की अमर बेल छा जाये, उसका आत्मा दुःखी हो उठता है। मन वश में करने और शान्त रखने का उपाय केवल एक है कि अपनी आवश्यकताओं को कम करो। यह शरीर है तुम्हारा, इससे तुमको कार्य लेना है। इसे भोजन खिलाओ अवश्य, परन्तु इसकी क्या आवश्यकता है कि भोजन के साथ उसको चटनी, मटनी, खटनी भी खिलाते जाओ, और पेट के अन्दर एक 'अखिल भारतीय भोजन सम्मेलन' आरम्भ कर दो? जब तुम बहुत-सी चीज़ें एक-साथ खा लेते हो तो जानते हो कि पेट में क्या होता है? भिण्डी एक ओर जाके बैठ जाती है, कहती है, "मुझे तो देर में पचना है, मैं बैठती हूँ, तुम पच लो।" आलू कहते हैं, "हम भी विश्राम करेंगे, अभी तो बहुत-सी वस्तुएँ पचने के लिए हैं, हमें जल्दी क्या है!" मूंग की दाल कहती है, "मैं तो झट पच जाती हूँ, मेरे लिए जल्दी क्या है, दूसरे आग में पड़ें। वे पच जायें तो मैं बढ़ूँगी।" इस प्रकार उनका झगड़ा होता है। कुछ भी नहीं पचता। तब पेट खराब होता है, रोग आते हैं। रोगों को दूर करने के लिए डॉक्टरों के पास जाना पड़ता है, औषधियाँ क्रय करनी पड़ती हैं, उनपर रुपया खर्च होता है, तब रुपया कमाने की धुन सवार होती है। उत्तम उपायों से रुपया न मिले तो लोग बेईमानी से कमाने का प्रयत्न करते हैं। कहाँ से आरम्भ होकर कहाँ पहुँच जाती है बात! तब आरम्भ में ही अपनी आवश्यकताओं को कम क्यों न करो? थोड़ा क्यों नहीं खाओ? याद रक्खो, मन को वश में करना है और चिन्ताओं से मुक्ति प्राप्त करनी है तो आवश्यकताओं को कम करो, उन्हें बढ़ाओ नहीं। छः साधन हैं मन को वश में रखने के। इनपर चलकर देखिए। मन आपके वश में आयेगा निश्चित रूप से।

'शम' के गुण को उत्पन्न करने के लिए, इस महान् सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए, दूसरा उपाय है योग-साधन। योग का अर्थ है

व्यष्टि को समष्टि में मिला देना। एक मन आपके अन्दर है, इसी प्रकार का एक मन सारे विश्व में फैला है, उसे समष्टि बुद्धि कहते हैं। एक चित्त आपके अन्दर है, इसी प्रकार का एक समष्टि चित्त बाहर है समस्त संसार में। एक प्राण आपके अन्दर है, इसी प्रकार का एक समष्टि प्राण है सारे संसार में। अपने मन को, बुद्धि को, चित्त और प्राण को विश्व में फैले हुए इस समष्टि मन, समष्टि बुद्धि, समष्टि चित्त और समष्टि प्राण के साथ मिला देने से योग का पहला अंग पूर्ण होता है। ऐसा करने से 'शम' की सम्पत्ति उत्पन्न होती है।

आप कहेंगे कि यह व्यष्टि और समष्टि की बात तो समझी, परन्तु ऐसा करने का उपाय भी तो बताओ। मैं उपाय भी बताऊंगा। ऐसा उपाय है जिसे सीखने और प्राप्त करने में साधु लोग वर्षों लगा देते हैं। मैं आपको कुछ वाक्यों में बताऊँगा; फिर करना-न-करना आपका कार्य है।

देखिए, प्रातः ३ से ६ बजे तक का समय २४ घंटों में सबसे उत्तम समय होता है। इस समय में नहा-धोकर, नहीं तो मुँह-हाथ धोकर एक स्थान पर बैठ जाओ। ऐसे स्थान पर बैठो जहाँ ध्यान, भक्ति और यज्ञ के अतिरिक्त और कुछ न होता हो। परन्तु प्रतिदिन उसी स्थान पर बैठो। कोई भी अन्य बात वहाँ न होने दो। यदि बड़ा घर है तो एक कमरा इस कार्य के लिए निश्चित करो। घर बड़ा नहीं है, एक कमरा ही है तो उसके एक भाग को इस कार्य के लिए निश्चित करो। अपने समक्ष धूप या अगरबत्ती जलाओ, घी का दीपक जलाकर रख लो, पानी का लोटा रख लो और बैठ जाओ एक आसन से। एक आसन का अर्थ है बैठने की ऐसी विधि जिसमें साधक अधिक-से-अधिक समय तक बिना किसी कष्ट के बैठ सके। सदा एक ही आसन पर बैठो। पद्मासन, सिद्धासन, शवासन, ऐसे कई आसन हैं। इन सबमें से किसी एक आसन को अपना लो। उसको अपनाये रक्खो। सिद्धासन और पद्मासन उत्तम हैं। उनमें पालथी मारकर पीठ और ग्रीवा को एक सीध में रखकर बैठना होता है।

परन्तु आजकल तो विचित्र समय आ गया है न! कई स्थानों में लोगों को पालथी मारना ही भूल गया है। मैं अफ्रीका में गया, वहाँ कुछ लोग पालथी मारना ही नहीं जानते। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जो लोग सिद्धासन या पद्मासन से नहीं बैठ सकते, वे योग के मार्ग पर चल ही नहीं सकते। जो लोग पालथी न मार सकें, उनके लिए अच्छा है कि वे शवासन को अपना लें। शव कहते हैं लाश को। लाश की भाँति लेट जाओ। पाँव के अंगूठों को कपड़े का छल्ला बनाकर उसमें डाल दो, कमर के ऊपर कपड़ा लपेटकर हाथों को कपड़े के अन्दर डाल दो, जिससे हाथ और पाँव न हिलें। और फिर चित लेटे रहो। इसको शवासन कहते हैं। परन्तु इस आसन को अपनाओ या किसी अन्य आसन को, जिसे अपना लो उसे छोड़ो नहीं, सदा उसको अपनाये रक्खो। आसन लगाने के पश्चात् पाँच बार गायत्री मन्त्र का जाप इस प्रकार करो कि तुम्हारे कान तुम्हारी आवाज़ को सुन सकें। फिर आँखें बन्द करके पाँच बार इस प्रकार जाप करो कि होंठ हिलें, आवाज़ सुनाई न दे। तब होंठ भी बन्द कर दो। पाँच बार इस प्रकार जाप करो कि बन्द मुँह के अन्दर जिह्वा हिले, और कुछ भी न हो। तब जिह्वा भी बन्द कर दो। कण्ठ में जाप करो। फिर कण्ठ में जाप करना भी बन्द कर दो। दो आँखों के मध्य में, भौहों के बीच माथे में जो स्थान है, जिसे भृकुटि कहते हैं वहाँ ध्यान करो। इस स्थान को प्रयाग भी कहते हैं। यहाँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाम की तीन नाड़ियाँ तीन नदियों के रूप में आकर मिलती हैं। इन नदियों को देखने का प्रयत्न करो। बार-बार प्रयत्न करने से नदियाँ दृष्टिगोचर होंगी, एक विशाल नदी में मिलती हुई प्रतीत होंगी। उस नदी के किनारे बैठ जाओ, वहाँ बैठकर ऊपर देखो। भृकुटि से ऊपर, सिर के उस भाग में जो मस्तक से ऊपर है जिसे ललाट कहा जाता है, वहाँ ध्यान लगाने से एक चमकता हुआ आकाश दिखाई देगा; उससे भी ऊपर चमकता हुआ सूर्य दिखाई देगा, उससे भी आगे शीतल प्रकाश वाला चन्द्रलोक भी दिखाई देगा, और यह सब-कुछ करते हुए आश्चर्यजनक

्य दिखाई देंगे।

यह है ध्यान-योग का सही और सीधा मार्ग। कहने को मैंने यह ात कुछ वाक्यों में कह दी, परन्तु इसपर अभ्यास करने में पर्याप्त मय लगेगा। समय लगे तो घबराओ नहीं, परिश्रम करते जाओ। न्ततः उस लक्ष्य पर पहुँचोगे अवश्य।

एक था बाग, उसमें बहुत अच्छे-अच्छे आम लगे थे। बाग में बन्दर ाते, आमों को खाने के लिए; बाग का माली उन्हें गुलेल मारता; न्दर घायल होते, चिल्लाते, फिर मार खाते, फिर भागते। बन्दरों ा सरदार बूढ़ा था। उसने सब बन्दरों को बुला के कहा, "हम ऊँचे रिवार के लोग हैं, हम आमों के लिए बार-बार मार खायें तो क्यों? अच्छी बात तो यह है कि हम अपने वृक्ष लगायें, उनपर आम लगें तो सुख से खायें। फिर कोई पत्थर मारनेवाला नहीं होगा, कोई रोकनेवाला न होगा।" सब बन्दरों ने कहा, यह तो ठीक बात है। सबने मिल के आमों की गुठलियाँ पृथिवी में दबा दीं। उनको पानी दिया और उनके सिरहाने बैठ गये। एक दिन बैठे रहे, दो दिन बैठे रहे, परन्तु थे तो बन्दर! तीसरे दिन उन्होंने पृथिवी को खोद के देखना आरम्भ कर दिया कि गुठलियों में आम लगे या नहीं।

देखो, इस प्रकार नहीं करना! धैर्य से काम लो। परिश्रम करते जाओ। प्रयत्न करते जाओ, सफलता मिलेगी अवश्य। इसके पश्चात् भी न मिले तो निराश होकर नहीं बैठ जाओ। संसार में ऐसे भी लोग हैं, जो इस लक्ष्य पर पहुँचने में आपकी सहायता कर सकते हैं। उनके पास जाओ, वे आपके मन को स्थिर कर देंगे।

यह है 'शम' की सम्पत्ति को प्राप्त करने का दूसरा उपाय। तीसरा साधन यह है कि किसी व्यक्ति को, किसी भी वस्तु को बुरा ा समझो, किसी को कुदृष्टि से न देखो। यदि तुम प्रत्येक स्थान, प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक वस्तु को बुरा कहते रहोगे, प्रत्येक बात में दोष निकालते रहोगे, हर समय दूसरों की आलोचना करते रहोगे, तो याद रक्खो कि तुम्हारा हृदय और मस्तिष्क भी वैसा ही बनता

चला जायेगा। जैसा दृष्टिगोचर होगा, वैसा ही तुम्हारा मन ब
जायेगा।

एक कथा सुनिये ! वीरान जंगल में एक सुन्दर मकान था।
साधु ने उसे देखकर सोचा, 'कितना सुन्दर स्थान है यह ! यहाँ बैठ
ईश्वर का ध्यान करूँगा।' एक चोर ने उसे देखा; सोचा, 'वाह !
तो सुन्दर स्थान है। चोरी का माल यहाँ लाकर रक्खा करूँगा।'
दुराचारी ने देखा; सोचा, 'यह तो अत्यन्त एकान्त स्थान है। दुराच
करने के लिए इससे उत्तम स्थान और कहाँ मिलेगा ?' एक जुआरी
देखा ; सोचा, 'अपने साथियों को यहाँ लाऊँगा। यहाँ बैठकर ह
जुआ खेलेंगे।' एक ही मकान को अलग-अलग दृष्टिकोण होने के कार
प्रत्येक व्यक्ति ने अलग-अलग रूप में देखा। जैसा दृष्टिकोण बनाओ
वैसा अन्तःकरण बनेगा अवश्य। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हा
अन्तःकरण अच्छा हो तो दृष्टिकोण अच्छा बनाओ।

'शम' की सम्पत्ति को प्राप्त करने का चौथा साधन है प्राणायाम
पहले अपने घर में इसका अभ्यास करो। वास्तविकता को पहचानो
जो जड़ है उसका मोह छोड़ दो, अच्छी वस्तुओं के लिए इच्छा उत्पन्न
करो, फिर एकान्त में जाकर अभ्यास करो। यदि घर में ही मन क
ठीक शिक्षा न दोगे तो बाहर जाके शैतानी करेगा।

नारद जी एक बार नगर में आये (दिल्ली नगर में नहीं)। यह
के लोग बहुत अच्छे हैं। एक और नगर में आए। एक पुराना मित्र
उन्हें मिला, संसार की विपत्तियों में फंसा हुआ। नारद जी ने कहा,
"यहाँ संकट में पड़े हुए हो, आओ तुम्हें स्वर्ग ले चलूं।" उसने कहा,
"और क्या चाहिए !" दोनों पहुँच गए स्वर्ग में, जहाँ सुन्दर पत्तों वाला
सुन्दर छाया वाला कल्पवृक्ष खड़ा था। नारद ने कहा, "तुम इस वृक्ष
के नीचे बैठो, मैं अभी [illegible] से मिलकर आता हूँ।" नारद चले गए तो

उसके नीचे खड़े होकर जो इच्छा की जाय वह पूरी होती है। उसी समय पता नहीं कहाँ से एक आरामकुर्सी आ गई। वह उसपर बैठ गया। बैठकर उसने सोचा, 'एक पलँग होता तो थोड़ी देर के लिए लेट जाता मैं।' विचार करने की देर थी कि पलँग भी आ गया। वह लेट गया। लेटते ही सोचने लगा, 'घर में होता तो पत्नी से कहता, मेरी टाँगें दबा दे, मेरा सिर मल दे।' सोचते ही बहुत-सी अप्सराएँ वहाँ उपस्थित हो गईं। कोई पाँव दबाने लगी, कोई गीत गाने लगी, कोई नाचने लगी। उस आदमी ने उन सबको देखा तो सोचा, 'यदि इन सब स्त्रियों के साथ मेरी पत्नी मुझे देख ले तो झाड़ू लेकर मेरी पिटाई कर डाले।' सोचना अभी समाप्त भी न हुआ था कि हाथ में झाड़ू लेकर पत्नी आ गई। धड़ाधड़ उसको मारने लगी। अप्सराएँ भाग गईं। वह पलँग से उठकर दौड़ा। आगे-आगे वह, पीछे-पीछे झाड़ू को लिये हुए पत्नी। नारद जी ने लौटते हुए उसे दूर से देखा; पुकारकर बोले, "मूर्ख ! सोचना ही था तो कोई अच्छी बात सोचते। यह क्या सोच बैठे तुम ? यह कल्पवृक्ष है।"

सो भाई मेरे, प्राणायाम के कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर अच्छी बात सोचना, बुरी बात नहीं सोचना। मन और प्राण का गहरा सम्बन्ध है। जहाँ एक जाता है वहाँ दूसरा भी जाता है। मन को शान्त करने के लिए प्राणायाम एक उत्तम साधन है। जगद्गुरु शंकर और महर्षि दयानन्द दोनों ने इसकी महिमा गाई है। चार-चार प्रकार के प्राणायाम हैं—रेचक (श्वास को बाहर निकालना), तब बाहर का कुम्भक (श्वास को बाहर रोके रखना), तब पूरक (श्वास को अन्दर खींचना), तब अन्दर का कुम्भक (अन्दर खींचते हुए श्वास को अन्दर ही रोकना)। अन्दर का या बाहर का वह कुम्भक तीन मिनट का हो जाय तो मन हाथ बाँधकर खड़ा हो जायेगा, पूछेगा—क्या चाहते हो ? तब हृदय में या भृकुटि में जहाँ भी ध्यान लगाओगे वहाँ प्रकाश दिखाई देगा। सामवेद में इसी प्रकाश का उल्लेख करते हुए कहा गया है, "मैं इस महान् प्रकाश का ध्यान करता हूँ।" यह जो दृष्टिगोचर होगा, आरम्भ

में माया का प्रकाश होगा, प्रकृति का प्रकाश। इसके अन्दर प्रविष्ट हो जाओ, तब आत्मा का प्रकाश दिखाई देगा—अधिक शीतल और अधिक प्रकाशमान। उस प्रकाश में ओ३म् का आश्रय लेकर आगे बढ़ो। ओ३म् का जाप करते हुए या किसी और नाम का जाप करते हुए, ओ३म् को देखने का प्रयत्न करते हुए अथवा किसी अन्य को देखने का प्रयत्न करते हुए आगे बढ़ो। तब आनन्द का द्वार जायेगा ; उसके दर्शन होंगे जिसके लिए योगी योग करते हैं, ग्रन्थ पढ़ते हैं, ध्यानी वर्षों तक कठोर तपस्या करते हैं। तब तुम्हें करना नहीं होगा। सब-कुछ स्वयं हो जायेगा। कबीर की भाँति भी कह सकोगे—

कबीरा मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर।
पाछे-पाछे हरि फिरें कहत कबीर कबीर॥

मन शान्त हो जायेगा, उस समय शम की वह सम्पत्ति प्राप्त जायेगी, जिसे षट् सम्पत्ति में सबसे प्रथम स्थान दिया गया है।

शम के पश्चात् दूसरी सम्पत्ति है दम अर्थात् इन्द्रियों का दम उन्हें वश में रखना। इन्द्रियाँ हैं दो प्रकार की। एक वे जो बाहर ज्ञान हमारे पास लाती हैं, दूसरी वे जिनसे हम कर्म करते हैं। ज्ञा लानेवाली इन्द्रियाँ कहती हैं, अमुक वस्तु का स्वाद बहुत उत्तम अमुक वस्तु बहुत सुन्दर है, अमुक शब्द मन को मोहनेवाला है। क करनेवाली इन्द्रियाँ कहती हैं, हम उन्हें लेंगी। दोनों अपना-अप व्यापार चलाती रहती हैं। मन उनका और आत्मा मन का दास ब जाता है—उस स्वामी के समान जो रथ में सवार हो, रथ का सार घोड़ों के वश में हो, और घोड़े आवारा हों। इन घोड़ों को, इन इन्द्रि को वश में रखना चाहिये। किस प्रकार यह हो सकता है, इस सम्बन्ध में एक कथा सुनिये। स्वामी रामतीर्थ जब प्रोफेसर तीर्थरा थे, तब लाहौर के एक कॉलेज में पढ़ाते थे। रहते थे लुहारी दरवाज़ में। कॉलेज से घर को आ रहे थे, तो लुहारी दरवाज़े में उन्होंने एक व्यक्ति को टोकरी में रखकर नींबू बेचते हुए देखा। पीले रंग के रस-

भरे नींबू थे वे। मुख में पानी आ गया। जिह्वा ने कहा, 'क्य कार लो, उनका स्वाद बहुत उत्तम है।' तीर्थराम थाड़ो देर रुके, फिर आगे बढ़ गये। आगे जाकर जिह्वा फिर मचली। उसने कहा, 'नींबू अच्छे तो थे, नींबू खाने में हानि क्या है?' तीर्थराम उल्टे आये। नींबुओं को देखा, वास्तव में वहुत उत्तम थे। उन्हें देखकर फिर घर की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर गये तो जिह्वा फिर चिल्ला उठी, 'नींबू का रस तो बहुत अच्छा है, नींबू तो खाने की चीज़ है, उसे खाने में पाप क्या है?' तीर्थराम पुनः नींबूवाले के पास आये। दो नींबू मोल ले लिये। घर पहुँच देवी से कहा, 'चाकू लाओ।'' उसने चाकू लाकर रख दिया। तीर्थराम चाकू को नींबू के पास और दोनों को अपने समक्ष रखकर बैठ गये। बैठे रहे, देखते रहे। अन्दर से आवाज़ आई, 'इन्हें काटो, काटने में क्या हानि है!' रामतीर्थ ने चाकू उठाया और एक नींबू को काट दिया। मुख में पानी भर आया। अन्दर से फिर प्रेरणा हुई, 'इसे चखकर तो देखो, इनका रस बहुत उत्तम है।' रामतीर्थ ने एक टुकड़े को उठा लिया; जिह्वा के समीप ले गये, नींबू को उसके साथ लगने नहीं दिया। अन्दर से किसी ने पुकारकर कहा, 'तू क्या इस जिह्वा का दास है, जो यह जिह्वा कहेगी वही करेगा? जिह्वा तेरी है, तू जिह्वा का नहीं।' समक्ष खड़ी पत्नी ने कहा, 'यह क्या करते हो? नींबू को लाये, इसे काटा, अब खाते क्यों नहीं?'' जिह्वा ने कहा, 'शीघ्रता करो, नींबू का स्वाद बहुत उत्तम है।' रामतीर्थ शीघ्रता से उठे, कटे हुए और बिना कटे दोनों नींबुओं को उठाकर गली में फेंक दिया, प्रसन्नता से नाच उठे, "मैं जीत गया!"

यह है इन्द्रियों को वश में करने की विधि! इनकी नहीं, इनके पीछे बैठे हुए आत्मा की, आत्मा के अन्दर बैठे हुए ईश्वर को प्रेरणा सुनो। महर्षि दयानन्द 'सत्यार्थप्रकाश' के नवें समुल्लास में कहते हैं, "जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे या बुरे कर्मों में लगता है, तभी बहिर्मुख हो जाता है। इसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे

कर्मों में भय, शंका एवं लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्तता है, वही मुक्ति जैसा सुख प्राप्त करता है।" इसी प्रकार महर्षि 'सत्यार्थप्रकाश' के सातवें समुल्लास में यह बतलाते हैं, "जब आत्मा और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता या चोरी आदि बुरी या परोपकार आदि अच्छी बात करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उसी समय जीव की इच्छा, ज्ञान आदि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती हैं उसी क्षण में आत्मा के अन्दर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्द उत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्म की ओर से है।" यह है सरल और सीधी विधि—अन्दर की ध्वनि सुनकर इन्द्रियों को वश में रखने की। और स्मरण रक्खो, अन्दर की ध्वनि सुनाई देती है प्रत्येक समय। नहीं सुनाई देती उन व्यक्तियों को जिन्होंने बाहर इतना कोलाहल मचा रक्खा है कि अन्दर की ध्वनि दबकर रह गई है। कमरे में घड़ी लगी हुई है। उसकी टक-टक भी होती है, परन्तु बाहर यदि बाजे बज रहे हों तो? कोलाहल बन्द करो, अन्दर की ध्वनि आयेगी अवश्य—

अन्दर के पट तब खुलें, जब बाहर के पट देय।

बाहर की इन्द्रियों को वश में करो, अन्दर से ध्वनि आयेगी ईश्वर की प्रेरणा सुनाई देगी। आँखें कहेंगी, अमुक सिनेमा बहुत अच्छा है, चलो देखें। मन प्रसन्न होगा। परन्तु आप कहेंगे, "आँखें तो मेरी सेविका हैं, मैं आँख का दास नहीं। मुझे उल्टे मार्ग पर न ले जा।" इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न करो। ऐसा करने से वह सम्पत्ति प्राप्त होगी जिसे दम कहते हैं।

दम के पश्चात् तीसरी सम्पत्ति है—तितिक्षा—सहन करने की शक्ति। शोक हो या रोग, दुःख हो या क्लेश, संकट हो या आपत्ति, सबको सहन करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना। इसके लिए शरीर को शक्तिशाली बनाना चाहिये, ऐसा बनाना चाहिये कि वह

गर्मी-सर्दी, आपत्ति-विपत्ति सबका साम्मुख्य कर सके। मन को दशा ऐसी होनी चाहिए कि सुख हो या दुःख, जो लक्ष्य अपने समक्ष रक्खा है उसे प्राप्त किये बिना पीछे न हटना पड़े। शरीर के लिए चरक ने कहा है, "जिसके अन्दर तीनों दोष सम अवस्था में रहते हैं, दोनों प्रकार की अग्नि सम रहती है, जिसके अन्दर धातु और मल ठीक रूप से कार्य करते हैं और जिसका आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न है वह स्वस्थ है। दोष हैं—कफ़, वात और पित्त ; तीनों सम रहें तो मनुष्य ठीक रहता है। अग्नि दो प्रकार की है—जठराग्नि और रक्ताग्नि। दोनों में से कोई भी बढ़ जाये तब रोग आते हैं। धातु है लोहा आदि। रक्त के अन्दर उनका परिमाण ठीक रहे तो कार्य चलता है, नहीं तो ठप्प होकर बैठ जाता है। यह पहचान इस बात की है कि आपका शरीर तितिक्षा की दशा में है या नहीं।

तितिक्षा के पश्चात् चौथी सम्पत्ति का नाम है—उपरति। इसका अर्थ है दुष्ट व्यक्तियों के संग से बचना। दुष्ट को सुधारने का प्रयत्न करना अवश्य। यदि वह सुधर नहीं पाता तो उससे परे हट जाना, उसके संग को त्याग देना। संगत अच्छी हो तो अच्छे परिणाम निकलते हैं, अच्छी न हो तो बुरे परिणाम समक्ष आते हैं।

उपरति के पश्चात् पाँचवीं सम्पत्ति है श्रद्धा, जिसके बिना कोई कार्य नहीं बनता। यदि तुम्हें पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता है तो पहले किसी व्यक्ति को अच्छी प्रकार जाँचकर देख लो। पूछताछ करो उसके सम्बन्ध में, और जब ज्ञात हो जाये कि वह पथ-प्रदर्शन करने योग्य है, तब उसपर पूरे विश्वास के साथ श्रद्धा करके, जो कुछ कहता है, उसे करते चले जाओ। श्रद्धा नहीं होगी तो ध्यान रक्खो, ठीक मार्ग दिखानेवाला भी तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर पायेगा। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, 'श्रद्धा से ज्ञान मिलता है, ज्ञान से शान्ति।' वेद भगवान् भी कहता है—

"श्रद्धा से अग्नि जलती है, श्रद्धा से हवि होमी जाती है। हम यह घोषणा करते हैं कि श्रद्धा ऐश्वर्य और सुख की चोटी पर रहती है।"

(ऋ० १०। १५१। १)

और श्रद्धा के पश्चात् छठी सम्पत्ति है समाधान—मन को
की ओर से हटाकर अन्दर की ओर एकाग्र कर देना। यह है
सम्पत्ति। परन्तु इसके बारे में अभी कुछ और भी बातें कहनी
आज समय हो गया है समाप्त, आगे चौथे भाषण में कहूँगा।

ओ३म् शम् !

चौथा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

ब्रह्म क्या है ? किस प्रकार इसको प्राप्त किया जाता है ? कि
प्रकार उसकी गवेषणा की जाती है ? इनकी बात करने से पूर्व जिज्ञा
में चार बातों का होना आवश्यक है। इनमें से तीसरे गुण षट् सम्पत्ति
की बात मैं आपको कह रहा था। षट् सम्पत्ति का अर्थ है छः प्रका
की सम्पत्ति। पहली सम्पत्ति है शम, दूसरी दम, तीसरी तितिक्षा, चौथी
उपरति, पाँचवीं श्रद्धा और छठी समाधान। शम और दम की बात तो
पर्याप्त विस्तार से आपको बता चुका। तितिक्षा का अर्थ है सहन
करने की शक्ति—शारीरिक और मानसिक रूप से प्रत्येक बात को
सहन करना। सहनशक्ति समाप्त हो जाय तो कितना अनर्थ होता है,
यह मिस्र में देखिये। मिस्र ने स्वेज़ को अपने अधिकार में कर लिया।
बरतानिया का स्वार्थ इसे सहन नहीं कर सका। अशान्ति की आग
जल उठी। संसार की भाँति परिवारों में भी सहनशक्ति न होने के
कारण आपत्ति आती है। आपत्ति से बचने का सीधा मार्ग यह है कि

केवल स्वयं मीठा बोलो। अगर दूसरे कड़वा बोलें तो उसे भी सहन करो। न केवल स्वयं ठीक मार्ग पर चलो, अपितु दूसरे यदि उल्टे मार्ग पर भी चलें तो उन्हें सहन करो। नहीं करोगे तो पहले क्रोध जागेगा, फिर दुःख जाग उठेगा। इसी प्रकार उपरति की महिमा को मैंने बताया। उपरति का अर्थ है बुरी संगत का त्याग। संगत का कितना प्रभाव होता है, यह इस बात से देखिये कि यमुना नदी आपके समीप बहती है। उसका पानी आपके क्षेत्रों और उद्यानों में पहुँचता है। जो पानी आम के वृक्ष की जड़ में जाता है, वह मधु की भांति मीठा हो जाता है; जो मिर्च के पौधे की जड़ में होता है, वह इतना तीखा हो जाता है कि उसे चखते ही लोग तड़प उठते हैं। यमुना का पानी तो एक है, संगत के कारण एक स्थान पर वह एक वस्तु बनाता है, दूसरे स्थान पर दूसरी वस्तु। संगत के प्रभाव से पानी की यह दशा होती है, तो मनुष्य की क्यों न होगी? विद्वान् लोग कहते हैं, मनुष्य अपनी संगत से पहचाना जाता है। मैं कहता हूँ संगत मनुष्य को बनाती है। अतः सौ कार्य छोड़कर भी सत्संग में सम्मिलित होना चाहिये। सहस्र कष्ट होने पर भी बुरी संगत से दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी प्रकार श्रद्धा के सम्बन्ध में बताया कि किस प्रकार वह मनुष्य का बेड़ा पार करती है। आज की सभ्यता ने सबसे बड़ा पाप किया यह कि लोगों की श्रद्धा को समाप्त कर डाला; प्रत्येक बात में तर्क करने और युक्ति देने की रीति उत्पन्न कर दी। शास्त्रार्थ बहुत करते हैं हम परन्तु किसी परिणाम पर नहीं पहुँच पाते। मैं यह नहीं कहता कि शास्त्रार्थ नहीं करने चाहिएँ। सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए बुद्धि से अवश्य कार्य लेना चाहिए, परन्तु कहीं पहुँचना भी तो चाहिये। केवल शास्त्रार्थ के लिए शास्त्रार्थ करते रहना क्या हुआ? जो व्यक्ति युक्ति लड़ाने के लिए युक्ति लड़ाते हैं वेद उन्हें जल्पी कहता है।

जल्पी क्या करते हैं, इसे समझने के लिए एक कहानी सुनिये। एक थे पति और पत्नी। नया विवाह हुआ। अलग रहने के लिए एक

मकान उन्होंने किराये पर लिया। एक सेठ साहब का मकान था वह। नीचे के भाग में सेठ स्वयं रहते थे, ऊपर के भाग में यह पति और पत्नी। अपने मकान को उन्होंने कुर्सियों और कौचों से सजाया, मेज़ों और बत्तियों से सजाया, पर्दों और कालीनों से सजाया। बहुत प्यार से रहते थे। एक दिन सेठ ने सुना कि वे दोनों झगड़ा कर रहे हैं। पत्नी भी ऊँचे-ऊँचे बोल रही थी, पति भी। युद्ध छिड़ गया प्रतीत होता था। सेठ जी पर्याप्त समय तक प्रतीक्षा करते रहे कि झगड़ा समाप्त हो जाय, वह समाप्त नहीं हुआ। आवाज़ के तोपखाने पूरे वेग से चल रहे थे। तब सेठ साहब घबराकर ऊपर गये; बोले, "किस बात पर झगड़े जाते हो? तुम तो कभी झगड़ते नहीं थे? तुम्हारे जैसे लोग मैंने नहीं देखे, फिर आज क्या हुआ?" पति ने कहा, "देखिये सेठ जी! आप ही इसको कुछ बुद्धि दीजिये। मैं कहता हूँ हम लड़के को वकील बनायेंगे, आनन्द से रुपया कमायेगा। समय पर कचहरी जायेगा, समय पर वापस आयेगा। यह मूर्खा कहती है कि उसे डॉक्टर बनायेंगे। अब बताइये, डॉक्टर का जीवन भी कोई जीवन है? दिन को शान्ति न रात्रि को विश्राम। डॉक्टर बनाना तो उससे शत्रुता करना होगा।" सेठ ने श्रीमती से पूछा तो वह बोली, "मेरे तो भाग्य खोटे थे जो इनके पल्ले पड़ी। इन्हें तो रुपयों के अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं। और फिर डॉक्टर क्या रुपया नहीं कमाते? रुपया कमाते हैं, दुःखियों की सेवा भी करते हैं। वकील का जीवन क्या है? हर समय झूठ, हर समय चिन्ता। मैं तो लड़के को डॉक्टर ही बनाऊँगी।" सेठ साहब ने सोचते हुए कहा, "इसके लिए इतना झगड़ा करने की क्या आवश्यकता है? लड़के से पूछ तो लो। यदि वह डॉक्टर बनना चाहता है तो डॉक्टर बना दो, वकील बनना चाहता है तो कानून पढ़ा दो। आओ! मैं तुम्हारे लड़के को पत्र लिखता हूँ। जो कुछ वह कहे उसे तुम दोनों मान लेना।" दोनों ने एक-साथ कहा, "परन्तु लड़का तो अभी पैदा ही नहीं हुआ!"

ऐसे लोगों को कहते हैं 'जल्पी'। सूत न कपास, घर में लट्ठम-

लट्ठा। ऐसे व्यक्तियों में श्रद्धा नहीं होती, श्रद्धा न हो तो ज्ञान नहीं होता, ज्ञान न हो तो मन को एकाग्रता नहीं मिलती, मन एकाग्र न हो तो ईश्वर नहीं मिलता। जो लोग ब्रह्म को ढूंढना चाहते हैं, उनके लिए आवश्यक है कि वे अपने अन्दर श्रद्धा उत्पन्न करें। ऐसे लोगों के लिए वेद कहता है, "उठो, जागो, और पहुँचो उनके पास जो जागे हुए हैं।" जागो इसलिए कहा कि संसार में कपट बहुत है। गुरु को ढूंढना हो तो पूर्ण बुद्धिमत्ता से कार्य लेना चाहिये। उसकी अच्छी प्रकार जांच करनी चाहिये। जब एक बार बात समझ में आ गई, तो उसपर श्रद्धा करनी चाहिए। आज के संसार में अद्भुत खेल हो रहा है। या तो ऐसी श्रद्धा है जिसमें बुद्धि नहीं, या फिर ऐसी बुद्धि है जिसमें श्रद्धा नहीं है। हर समय पहचान होती रहती है, निर्णय नहीं होता। ये दोनों ही विधियां अशुद्ध हैं। श्रद्धा से पहले पूरे होश में जाँच करनी चाहिए, जाँच के पश्चात् पूरे विश्वास के साथ श्रद्धा करनी चाहिए, तभी बेड़ा पार होता है, नहीं तो नहीं।

और अन्त में छठी सम्पत्ति है 'समाधान'—मन को बाहर की सभी बातों से हटाकर ध्यान में लगा देने की शक्ति। मन यदि बाहर की बातों में फँसा रहे, उन्हीं की बातें सोचता रहे, तो ध्यान कभी होता नहीं। केवल ज्ञान से एकाग्रता प्राप्त नहीं होती। केवल अभ्यास से भी नहीं होती। ज्ञान और अभ्यास जब दोनों मिलें तब मन एकाग्र होता है। बाहर की बातों से मन को हटा देना, एकाग्र कर देना, ध्यान में मग्न हो जाना, ऐसी बातें हैं जिन्हें आप प्रतिदिन सुनते हैं। परन्तु आज मैं इसके सम्बन्ध में योग के कुछ ऐसे भेद बताऊँगा जिन्हें योगी लोग वर्षों से तप और ध्यान से प्राप्त करते हैं। चित्त और मन दोनों जड़ हैं। स्वयं वे कोई कार्य नहीं करते, स्वयं उनमें कोई शक्ति नहीं। उनमें शक्ति आती है और वे काम करते हैं उस समय जब आत्मा का प्रतिबिम्ब उनके ऊपर पड़ता है। यह प्रतिबिम्ब न पड़े तो मन कोई कार्य नहीं करता। मन न करे तो इन्द्रियाँ भी नहीं करतीं। मैं यह चश्मा लगाता हूँ न, इसलिए कि इससे दूर तक दिखाई देता है।

परन्तु देखने का कार्य क्या यह चश्मा करता है ? मैं आँखें बन्द कर लूं तो चश्मा के वर्तमान रहने पर भी दिखाई नहीं देगा। परन्तु वास्तव में ये आँखें भी कुछ नहीं देखतीं। आपने देखा होगा कि कई लोगों की आँखें हैं फिर भी वे देख नहीं पाते; देखने का कार्य आँखें नहीं करतीं अपितु वह तन्मात्रा करती है जो आँखों के पीछे रहती है। परन्तु वास्तव में रूप-तन्मात्रा भी नहीं देखती, देखता है मन; और मन भी नहीं देखता, उसे देखने की शक्ति देता है आत्मा। वह अपनी शक्ति को हटा ले तो ये सब उपकरण किसी काम के नहीं रहते, कोई भी देख नहीं सकता। और जो दशा आँखों की है वही नाक, कान, जिह्वा और दूसरे उपकरणों की है। मन के कारण वे कार्य करते हैं और मन काम करता है आत्मा के कारण। देखनेवाला, सूंघनेवाला, सुननेवाला और स्वाद लेनेवाला वास्तव में आत्मा है। वह मिट जाये तो यह सब-कुछ लाश बन जाता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, उनके पीछे खड़ी हुई पाँच तन्मात्राएँ, उनके पीछे खड़ी हुई बुद्धि, उसके पीछे खड़ा हुआ मन, और उसके पीछे खड़ा हुआ चित्त—ये सब जड़ हैं। केवल उनके पीछे खड़ा हुआ आत्मा ऐसी वस्तु है, जो प्रकृति नहीं। यह समझता है, "मैं ही चित्त हूँ, मैं ही मन हूँ।" यह कोरे भ्रम के अतिरिक्त और कुछ है नहीं। चित्त और मन का स्वभाव है देखी, सुनी और जानी बातों को याद रखना, उनके सम्बन्ध में सोचते रहना, और फिर उनमें ठहर जाना। योगियों की भाषा में इसे 'परिख्या' (बार-बार याद करना), 'प्रवृत्ति' (झुकाव या लगाव हो जाना) और स्थिति (ठहर जाना) कहते हैं। चित्त की वृत्तियाँ पाँच हैं—पहली 'क्षिप्त' अर्थात् रजोगुण और तमोगुण में डूबे रहना; दूसरी—'निक्षिप्त' अर्थात् सात्त्विक बातों और सात्त्विक भाव में डूबे रहना; तीसरी 'मूढ़' अर्थात् सात्त्विक, तामसिक या राजसिक किसी भाव का न रहना—घोर नींद में सो जाना; चौथी 'एकाग्र' अर्थात् जो बात हम चाहते हैं, उसके अतिरिक्त मन को और किसी ओर न जाने देना, और पाँचवीं 'निरुद्ध' अर्थात् सभी विचारों, इच्छाओं और भावनाओं का अन्त हो

जाना, केवल अपने-आप में खो जाना। पहली तीन दशाएँ योग में कुछ काम नहीं आतीं, काम आने की अपेक्षा उसमें रुकावट डालती हैं। दूसरी दोनों दशाएँ योग में काम आती हैं—पहली दशा योग की अवस्था को उत्पन्न करती है, एकाग्र होकर मन या चित्त योग के लक्ष्य की ओर बढ़ता है; दूसरी दशा का योग लक्ष्य है। इसमें वह महान् ज्योति दिखाई देती है जिसे योगी देखने का प्रयत्न करता है।

इस अन्तिम दशा को उत्पन्न करने और उस ज्योति को देखने की एक विधि यह है कि प्रातः जब सूर्य पूर्व की दिश में उदय हो रहा हो तब अपने मकान की छत पर खड़े हो जाओ। सूर्य निकलने के कुछ समय पूर्व ही खड़े हो जाओ और उगते हुए सूर्य को देखो। एक क्षण के लिए सूर्य की आँख से आँख मिलाओ, फिर बन्द कर लो। बन्द कर लेने पर भी चमकता हुआ सूर्य दिखाई देता रहेगा। जब दिखाई देना बन्द हो जाय तब फिर आँखें खोल दो, फिर सूर्य को एक क्षण देखो, फिर आँखें बन्द करके उस ज्योति को अपने अन्दर देखो, बार-बार ऐसा करने से एक ओर शारीरिक लाभ होगा—सूर्य की किरणों के साथ-वाली विद्युत् आँखों के द्वारा शरीर में प्रविष्ट होगी। दूसरी ओर मानसिक लाभ होगा। ज्योति का वह आधार आपको मिल जायेगा जिस-पर आपको ध्यान जमाना है, जिसपर अपने मन को एकाग्र करना है।

वेद ने ईश्वर को ज्योतियों की ज्योति कहा है। सूर्य की ज्योति को देखने से आपको उस महान् ज्योति का थोड़ा-सा संकेत मिल जायेगा। सायंकाल अथवा रात्रि के समय जब चहुँ ओर अँधेरा हो तब ध्यान में उस ज्योति को देखो, जो सूर्य में दृष्टिगोचर हुई थी बार-बार देखोगे, बार-बार उस ज्योति का ध्यान करोगे, तो वह ज्योति भृकुटि में टिक जायेगी। जब भी नेत्र बन्द करोगे, वह दिखाई देगी। जब ऐसी दशा उत्पन्न हो जाये, तब समझो कि मन को एकाग्र करने की पहली सीढ़ी चढ़ गये।

इसके पश्चात् भृकुटि में दिखाई देनेवाली इस ज्योति को लगातार देखते रहो। योग की भाषा में इसे आन्तरिक त्राटक कहते हैं

त्राटक का अर्थ है आँख झपके बिना देखते रहना। अन्दर की ज्योति को निरन्तर देखते रहो। वहाँ अन्दर तो आँखें झपकने का कोई प्रश्न ही नहीं। हाँ, ध्यान की आँखों को इधर-उधर न होने दो, तब अन्दर से अद्‌भुत ध्वनियाँ सुनाई देने लगेंगी। कभी ऐसा प्रतीत होगा जैसे नदी बही जाती हो, कभी ऐसे जैसे ऊपर से पानी गिर रहा हो, कभी ढोल की ध्वनि सुनाई देगी, कभी मृदङ्ग की, कभी वंशी बज उठेगी, कभी सितार; नाना प्रकार के बाजों की ध्वनियाँ सुनाई देने लगेंगी।

वे ध्वनियाँ हैं जिन्हें 'अनहद बाजे' कहते हैं—ऐसे बाजे जिन्हें कोई बजाता नहीं। अभ्यास करनेवाले जब भी चाहें, इन ध्वनियों को सुन सकते हैं। परन्तु ध्यान रक्खो ये सब ध्वनियाँ और वह ज्योति जिसे तुम ध्यान में रखते हो, जड़ वस्तुएँ हैं। वे केवल इसलिए हैं कि आपके मन में आगे बढ़ने की श्रद्धा उत्पन्न हो। इन्हें देखते और सुनते हुए आगे बढ़ो। उसी ज्योति में अधिक तीव्र बड़ी ज्योति दिखाई देगी। कभी ऐसा प्रतीत होगा कि बहुत बड़ी अग्नि जल उठी है, कभी ऐसा कि कितने ही सूर्य चमक उठे हैं, कभी ऐसे कि कई जुगनू (पटबीजने) एक-साथ जगमगा उठे हैं—ऐसे कई खेल दिखाई देंगे परन्तु ये सब-की-सब वस्तुएँ भी जड़ हैं। इनको देखकर रुको मत, और आगे बढ़ो, उसी ज्योति में जो तुम्हें दिखाई देती है। तब एक विशेष प्रकार की गन्ध आने लगेगी—ऐसी गन्ध जो बाहर के संसार में कहीं पर नहीं। तब ऐसा प्रतीत होगा जैसे किसी ने तुम्हारे सिर पर आशीर्वाद का हाथ रख दिया है। आशीर्वाद के मिलते ही सब-कुछ गुम हो जायेगा। सुन्न हो जायेगा सब-कुछ। यह दशा उत्पन्न हो जाय तब समझो कि दूसरी सीढ़ी चढ़ गये हो। परन्तु पहली हो या दूसरी, सीढ़ी तो लक्ष्य नहीं। अभी और आगे बढ़ो, तब अहंकार दिखाई देगा—यह तीसरी सीढ़ी है। तब आत्मा अलग दिखाई देगा, शरीर अलग। ऐसा प्रतीत होगा कि आत्मा के अतिरिक्त सब-कुछ जड़ है; यह चौथी सीढ़ी है। तब और बढ़ो। एक ओर सम अवस्था में निर्गुण प्रकृति दृष्टिगोचर होगी। इसमें रंग नहीं, रूप नहीं, गन्ध नहीं—कुछ भी नहीं; दूसरी

और आत्मा दिखाई देगा चमकता हुआ। उस आत्मा का सहारा लेकर आगे बढ़ो पाँचवीं सीढ़ी की ओर, चलो परमात्मा की ओर, क्योंकि परमात्मा का दर्शन केवल आत्मा ही कर सकता है। मन, बुद्धि, अहंकार, यह शरीर, सब जड़ है; जड़ को परमात्मा दिखाई नहीं देता, आत्मा को दिखाई देता है। क्या है वह परमात्मा, यह बताने की आवश्यकता नहीं। कोई इसका वर्णन नहीं कर सकता। केवल इतना कहना चाहिये कि वह अनन्त है, उसके अन्दर अनन्त आनन्द है। उसको देखने के पश्चात् और कुछ देखना शेष नहीं रहता, उसको पाने के पश्चात् कुछ पाना शेष नहीं रहता।

यह है षट् सम्पत्ति। विधि मैंने बता दी, जिसके भाग्य में है वह अभ्यास करे। लगातार अभ्यास करने से सफलता मिलेगी अवश्य।

जैसा कि मैंने पहले कहा, महर्षि दयानन्द और जगद्गुरु शंकराचार्य दोनों ने ब्रह्म को पाने के लिए चार साधनों को आवश्यक माना है। 'षट् सम्पत्ति' उनमें तीसरा साधन है। चौथे साधन की बात कहने से पूर्व, एक बात आसन के सम्बन्ध में सुनिये।

मन को एकाग्र करने में आसन बहुत सहायता करता है। योगी लोग कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति ३ घंटे ३६ मिनट बिना हिले-जुले, बिना थके और बिना कष्ट के एक ही आसन में बैठ सके तो उसका मन स्वयमेव एकाग्र हो जाता है। आरम्भ में तो तीन घण्टे और ३६ मिनट का आसन लगाया नहीं जा सकता। इस दशा को प्राप्त करने की विधि यह है कि पहले आप जितनी देर बैठ सकते हैं उतनी ही देर बैठिये। यदि आप आध घण्टा बैठ सकते हैं तो आध घण्टा बैठिये, तब इस समय को पाँच-पाँच मिनट करके बढ़ाते जाइये। एक सप्ताह ३५ मिनट, दूसरे सप्ताह ४० मिनट, फिर ४५ मिनट, इसी प्रकार धीरे-धीरे बढ़ाते जाइये। अन्त में तीन घण्टे और ३६ मिनट की दशा भी उत्पन्न हो जायेगी। फिर एक और बात भी याद रखिये कि जहाँ आप एक बार ध्यान लगाते हैं, चाहे भृकुटि या हृदय में, प्रतिदिन वहीं लगाते रहें, ध्यान लगाने के स्थान को न बदलें।

अब सुनिये चौथे साधन की बात, जिसे महर्षि दयानन्द और शंकराचार्य ब्रह्म-प्राप्ति के लिए आवश्यक समझते हैं। इस साधन का नाम है 'मुमुक्षुत्व'—मुक्त होने की प्रबल इच्छा। इस इच्छा का अर्थ यह है कि संसार के लोगों से हटाकर अपने-आप को ईश्वर की ओर लगा दो। ईश्वर का दर्शन पाने के लिए, उसे प्राप्त करने के लिए इस प्रकार व्याकुल हो जाओ जैसे पानी से बाहर आकर मछली व्याकुल हो जाती है।

इस दशा के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' में जो कुछ लिखा है वह सुनिये। महर्षि कहते हैं, "जैसे क्षुधा-तृषातुर को सिवाय अन्न-जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वैसे बिना मुक्ति के साधन और बिना मुक्ति के दूसरे में प्रीति न होना।"

नवयुवक पति जैसे पत्नी के लिए, पत्नी जैसे पति के लिए व्याकुल होती है, ऐसी व्याकुलता ईश्वर को पाने के लिए उत्पन्न हो जाय, तो उसे मुक्त होने की इच्छा कहते हैं, उसे मुमुक्षुत्व कहते हैं।

जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं, तीन बातें बहुत कठिनता से प्राप्त होती हैं—मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और साधु की संगत। मनुष्य बनना, मनुष्य बनने के पश्चात् मुक्त होने की इच्छा और मुक्त होने की इच्छा के पश्चात् ऐसे महापुरुष की संगत जो इस इच्छा को पूर्ण करने का मार्ग दिखा सकता हो।

कहते हैं मनुष्य-शरीर ८४ लाख शरीरों में घूमने के पश्चात् मिलता है, परन्तु यह ८४ लाख तो केवल कहने की बात है। मनुष्य-शरीर के अतिरिक्त दूसरे शरीर ८४ लाख के कई गुणा अधिक हैं। जिस पृथिवी पर हम रहते हैं, इसपर कई करोड़ प्रकार के शरीर हैं। यह पृथिवी है सौर-मण्डल का एक छोटा-सा भाग। इतना छोटा कि इसके एक और ग्रह बृहस्पति में १३५० पृथिवियाँ समा सकती हैं। इस विशाल सौर-मण्डल में एक छोटी-सी गेंद की भाँति यह पृथिवी उड़ी जाती है, जिसपर आज ढाई अरब मनुष्य रहते हैं। परन्तु यह सौर-मण्डल जिसे हम विशाल कहते हैं, उस महासूर्य-मण्डल में धूल के एक कण के

पाँचवाँ दिन

प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

कल मैंने कहा था कि आपको वेदान्त के विशाल वन में ले उसमें भ्रमण कराऊँगा। परन्तु, ऐसा करने से पूर्व दो प्रश्नों देना चाहता हूँ जो आप में से कुछ सज्जनों ने मेरे पास भेजे हैं प्रश्न को पूछनेवाले सज्जन कहते हैं कि कई दिन से हम आपक सुन रहे हैं, उसमें आनन्द भी लेते हैं, जी लगता है उसमें, परन्त दिन आप आत्मा की बात करते हैं, उसका क्या लाभ है ? संसा और विशेषकर भारत को आज आवश्यकता है भौतिक उन्नति उद्योग-धन्धों और कृषि के क्षेत्र में आगे बढ़ने की। धन की, व की बात सुनाने के स्थान पर आप जो आत्मा की कहानी सुनाते हैं, उससे क्या होगा ? पता नहीं कि आत्मा है भी या नहीं, यदि भी तो उसके मिल जाने से क्या लाभ होगा ?

यह है प्रश्न—इसे देखकर मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ

कथा को प्रारम्भ करते समय मैंने आपको महात्मा विदुर धृतराष्ट्र की बात सुनाई थी। ठीक ऐसी ही बात है यह। विदु कहा था, "समस्त संसार आज लोभ, भय और क्रोध से पागल हो है !" पाँच सहस्र वर्ष पूर्व यदि यह बात ठीक थी तो आज भी है। पाँच सहस्र वर्ष पूर्व यदि संसार दुःख से पागल था तो आज उ अधिक दुःखी और अधिक पागल है। भौतिक उन्नति हुई है अव विज्ञान आगे बढ़ा है, औद्योगिक और कृषि-उत्पत्ति बढ़ी है, परन्तु भी है किसी को ? धनी-से-धनी और निर्धन-से-निर्धन व्यक्ति से जा पूछो, क्या वह सुखी है ? यूरोप और अमेरिका तो उद्योग और कृ में हमसे बहुत आगे हैं, विज्ञान में आगे हैं। सम्पत्ति और व्यापार में आ हैं। उनसे जाकर पूछो क्या वे सुखी हैं ? क्या उनके मन में आन

केवल एक लाभ है—बहुत साधारण-सा लाभ, परन्तु तुम्हारी समस्त उन्नति से अधिक है जिसे तुम औद्योगिक, कृषिक, व्यापारिक और आर्थिक उन्नति कहते हो।

अब एक और लाभ सुनो ! जब आत्मा जाग जाता है, जब आत्म प्राप्त हो जाता है, तब एक ऐसी शक्ति मनुष्य में आती है जैसी शक्ति और किसी भी उपाय से नहीं मिलती।

बुद्ध घूम रहे थे। भारत में भ्रमण करते हुए मगध में पहुँचे तो ए नगरी के बाहर डेरा डालकर बैठ गये। लोग उनके दर्शनों को आये बुद्ध ने पूछा, "क्या हाल है ?" सबने कहा, "बहुत दुःखी हैं हम। किसी ने कहा, "मेरा लड़का मारा गया।" किसी ने कहा, "पति मा गया।" किसी ने कहा, "भाई मारा गया।" बुद्ध ने आश्चर्य से पूछ "क्या हो गया है तुम सबको ? क्या कोई युद्ध यहाँ पर हुआ ? क राजा ने अत्याचार आरम्भ कर दिया ?" लोगों ने कहा, "नहीं मह राज ! राजा भी अच्छे हैं, युद्ध भी नहीं हुआ। परन्तु यहाँ एक डा रहता है अंगुलीमाल। वह प्रतिदिन एक नये व्यक्ति को मारकर उस अंगुली काट लेता है। जिस देवी की वह पूजा करता है, वह उ एक हज़ार अंगुलियों की माला पहनाना चाहता है। उसे किसी कह दिया कि ऐसी माला पहनाने से बड़ी सिद्धि मिल जायेगी बुद्ध ने पूछा, "कहाँ रहता है वह ?" लोगों ने बताया, "नगर दूसरी ओर विशाल वन में।" बुद्ध बोले, "मैं उसके पास जाऊँगा लोगों ने अशान्त होकर कहा, "उसके पास मत जाइये महाराज ! परन्तु बुद्ध माननेवाले नहीं थे, उठे, चल पड़े। लोगों ने कहा, "उ राजा के सिपाही भी नहीं हरा सके, आप बिना हथियार के क्या करेंगे! बुद्ध बोले, "मेरे पास ऐसा हथियार है जिसके सम्मुख और कोई हथि यार नहीं चलता।" और वे नगर को पार करके जंगल में पहुँचे सुनसान और वीरान वन था वह, अत्यन्त भयानक। कहीं कोई व्यक्ति नहीं, कोई पशु नहीं। बुद्ध चलते गये। पर्याप्त आगे जाकर एक वृ स्त्री मिली। बुद्ध ने पूछा, "माँ ! क्या तुम जानती हो कि अंगुलीमा

पर बना हुआ। एक पहाड़ी पर वहाँ का आर्यसमाज भी बना है, दस लाख रुपये लगाकर। बहुत सुन्दर स्थान है। वहाँ कम्पाला में कुछ हिन्दुस्तानी हैं, कुछ अंग्रेज़, बहुत-से हब्शी। विचित्र प्रकार के हैं वे लोग—दाढ़ी है न मूंछ। सिर के बाल भी नहीं। वहाँ एक चोटी या दो चोटी बनाने का झगड़ा नहीं करना पड़ता। मैंने उनको देखा तो पूछा, "क्या तुमने कभी शीशा नहीं देखा ?" वे बोले, "हाँ, देखते हैं।" मैंने पूछा, "तुम सुन्दर किसको समझते हो ?" वे बोले, "जो सबसे काला हो, जिसके होंठ सबसे मोटे हों।" मैंने हँसते हुए कहा, "मेरे सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है ?" वे बोले, "तुम अंग्रेज़ की अपेक्षा सुन्दर हो, हमारी अपेक्षा नहीं।" वे लोग भी अपने सौन्दर्य पर मस्त हैं।

विरोचन जब प्रजापति की बात सुनकर आया तो वह भी अपने सौन्दर्य पर मस्त हुआ। उसने अपने साथियों से कहा, "यह शरीर ही आत्मा है, इसको खिलाओ, पिलाओ, स्नान कराओ, सजाओ, यही आत्मा की पूजा है। जितना इसे प्रसन्न करोगे, उतना ही आत्मा सन्तुष्ट होगा।" सभी राक्षस ऐसा करने लगे। आज भी राक्षस-बुद्धि के लोग यही करते हैं। परन्तु इन्द्र था देवता। उसके मन में देव-बुद्धि कार्य कर रही थी। घर लौटते हुए उसने सोचा—प्रजापति ने मुझे यह क्या बता दिया ? आत्मा तो अजर और अमर है और यह शरीर बूढ़ा होनेवाला, मरनेवाला; फिर यह आत्मा कैसे हो सकता है ? प्रतीत होता है कि समझने या समझाने में कोई त्रुटि हो गई।

ऐसा सोचते ही वह प्रजापति के पास आया; बोला, "यह शरीर तो आत्मा नहीं हो सकता। यह उत्पन्न होता है, बूढ़ा होता है, मरता है। आत्मा कभी मरता नहीं, फिर आत्मा क्या है ?"

प्रजापति ने कहा, "तुम बुद्धिमान् हो; तुम आत्मा को जानने के अधिकारी हो। विरोचन तो वैसे ही चला गया। तुम्हें बताता हूँ, सुनो कि आत्मा क्या है।"

परन्तु क्या है आत्मा ? किसी व्यक्ति का लड़का या कोई अन्य

वेद ने प्राण को पालने की निन्दा क्यों की, इस बात को समझना चाहिए। वास्तविकता यह है कि प्राण को पालना या शरीर को अन्न देना बुरा नहीं। यह शरीर तो भगवान् का मन्दिर है। जो लोग इसे जीवित रखने के लिए खाते हैं, वेद उन्हें असुतृप नहीं कहता। यह असुतृप कहता है उन लोगों को जो जीने के लिए नहीं खाते, खाने के लिए जीते हैं। भोजन का साधारण नियम यह है कि इतना खाओ जिससे जीवन बना रहे, कार्य कर सको, यह नहीं कि कार्य भूलकर बस खाते ही रहो। फ़ारसी का शे'र है—

"ख़ुर्दन बराये जीस्तन व ज़िक्र करदन अस्त।
तो दानी कि जीस्तन बराये ख़ुर्दन अस्त॥

अर्थात् भोजन करना चाहिए इसलिए कि जी सको और प्रभु को याद कर सको। परन्तु तुम समझ बैठे हो कि जीना केवल खाने के लिए है। और आजकल देखिये क्या यही दशा नहीं? प्रातः उठो तो खाट पर ही 'बेड टी', फिर 'अरली टी', फिर केवल 'टी', तब ऑफ़िस में 'लंच टी', सायंकाल 'ऑफ़िस टी', रात्रि को 'नाइट टी', प्रातः से सायं तक टी पी, टी पी, टी पी, टी पीओ जी! यहीं समाप्त नहीं होता। पार्टी भी होती है तो टी पार्टी। कोई यह नहीं सोचता कि दूध-मक्खन पार्टी या घी पार्टी कर दे। विचित्र दृश्य हमने बना रक्खा है। प्रातः से सायं तक एक ही चिन्ता—क्या खायें? और यह निर्णय हो जाये कि क्या खायें तो फिर यह चिन्ता कि कहाँ से लायें?

जीवन का विचित्र नुस्खा हमने खोज रक्खा है—पहले खाओ, फिर कमाओ, इतना खाओ कि डॉक्टर के पास जाना पड़े, इतना कमाओ कि रोगी हो जाओ, फिर मर जाओ।

इस प्रकार तो ईश्वर के दर्शन नहीं होते! और उनको भी नहीं होते जो केवल दिखावे के लिए भक्त बनते हैं, केवल जिह्वा से नाम का जाप करते हैं। नाम जपने से मन का मैल अवश्य दूर होता है, परन्तु केवल उसी समय जब नाम का साबुन मन के कपड़े तक पहुँचे। आप मन को रक्खें एक ओर और साबुन को मलें दूसरी ओर तो फिर यह

मैल कभी दूर होगा नहीं।

एक व्यक्ति था, बहुत मैले कपड़े थे उसके; उन्हीं को पहनकर वह घूमता रहता था। एक सज्जन ने उसे देखा तो कहा, "भाई! तू इतने मैले कपड़े पहने फिरता है, थोड़ा साबुन लेकर इनको धो ही ले। क्यों यह मैल साथ लिये घूमता है? यह तो रोग का घर है।" उस व्यक्ति ने कहा, "साबुन से क्या होगा?" सज्जन बोले, "कपड़े साफ हो जायेंगे। मैल दूर हो जायेगा।" उस व्यक्ति ने साबुन की एक टिकिया बाजार से खरीदी। नदी पर गया, अपने कपड़े पानी में भिगोये, उनके ऊपर साबुन की टिकिया रख दी और स्वयं एक ओर बैठ गया। घंटा बीता, दो घण्टे बीते, तीन घण्टे व्यतीत हो गये। वह प्रतीक्षा करता रहा कि कपड़े स्वच्छ हों तो उन्हें पहनकर घर चलूँ। परन्तु वहाँ तो कुछ हुआ नहीं। अन्ततः सायंकाल उसने वस्त्र उठाये, क्रोध से जलता हुआ उस सज्जन के पास पहुँचा जिसने उसे कपड़े धोने के लिए कहा था। उसके पास जाकर गालियाँ देता हुआ बोला, "तू तो कहता था कि साबुन से कपड़े स्वच्छ होते हैं, देख कहाँ हुए? ये तो वैसे ही हैं। अब पहनूँ क्या? पहले सूखे थे, अब गीले हो गये हैं।" सज्जन ने कहा, "अरे अभागे! इस प्रकार भी क्या कपड़े धोये जाते हैं? अरे कपड़े धोने हों तो साबुन को कपड़े पर रगड़ना पड़ता है, कपड़े को पत्थर पर पटकना पड़ता है, बराबर ऐसा करने से मैल कट जाता है, और तू कपड़ों के ऊपर साबुन रखकर बैठा रहा।" जो लोग केवल जिह्वा से राम जपते हैं, केवल दिखाने के लिए भक्ति करते हैं, उनकी भी यही दशा है। उनके मन का मैल कभी कटता नहीं। उनकी पुकार हृदय के अन्दर बैठे प्रभु के पास पहुँचती नहीं।

महाराज जनक-याज्ञवल्क्य की जो कथा मैं आपको सुना रहा था, उसमें जनक ने पूछा कि अन्दर होने पर भी ईश्वर दिखाई क्यों नहीं देता? तो याज्ञवल्क्य ने कहा—चार पर्दों के कारण। ये चार पर्दे हैं—बहुत भोजन करना, बहुत तर्क करना, ठीक चिन्तन का न होना और श्रद्धा का न होना। इन चार पर्दों को हटा दीजिये, फिर देखिये कि

शंकर कहते हैं—जो तीन काल में सदा एक-समान रहे उसको सत्य कहते हैं।

शिष्य ने प्रश्न किया—चित् क्या है ?

शंकर ने उत्तर दिया—जो स्वयं जागता है और सब पदार्थों को जगाता है वही चित् है।

शिष्य ने पूछा—आनन्द क्या है ?

शंकर ने कहा—जिसमें दुःख न हो, दुःख का नाम और चिह्न भ न हो, केवल सुख ही सुख हो, वह आनन्द है।

यह है ईश्वर का स्वरूप ! स्वरूप पता हो तो उसको पहचान कठिन नहीं, देख लेने पर जानना कठिन नहीं।

'विवेक चूड़ामणि' में जगद्‌गुरु शंकराचार्य कहते हैं—वह स्वय कभी उत्पन्न नहीं होता, कभी मरता नहीं। जैसे घड़े के नष्ट हो जा पर घड़े के अन्दर का आकाश नष्ट नहीं होता, इसी प्रकार शरीर नष्ट होने से शरीर में रहनेवाले आत्मा का नाश नहीं होता।

इससे अगले श्लोक में वे कहते हैं—

प्रकट न होनेवाला परमात्मा जब प्रकट होनेवाली प्रकृति में प्रेर करता है, तब प्रकृति न रहकर विकृति बन जाती है।

जो भाई समझते हैं कि जगद्‌गुरु शङ्कराचार्य आत्मा के अतिरि और किसी भी अस्तित्व को नहीं मानते थे, उन्हें इस श्लोक को ध्य से पढ़ना चाहिए। आत्मा के अतिरिक्त एक प्रकृति भी है, जो आ की शक्ति से विकृति बनती है, ऐसा जगद्‌गुरु शंकराचार्य घोषणापू कहते हैं। ब्रह्म और विकृति को एक-दूसरे से पृथक् करने के पश् वे जीवात्मा को भी ब्रह्म से अलग करते हैं। कहते हैं, जीवात्मा के अन्दर रहता है, 'मैं हूँ' ऐसा अनुभव होता है, जागते समय, देखते समय और गाढ़ निद्रा की दशा में सदा एक-सा रहता है। इसका अर्थ क्या हुआ ? यह कि जगद्‌गुरु शंकराचार्य ब्रह्म, जीव प्रकृति तीनों को मानते हैं। यदि तीनों को मानें तो यह कहन एक ब्रह्म ही है उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं, सत्य कैसे हुआ

आनन्द से परिपूर्ण है तो उसी का एक भाग दुःख में क्यों डूब गया? वे जगद्गुरु उत्तर देते हैं कि अज्ञान से ऐसा हुआ। परन्तु इसका अर्थ तो यह हुआ कि माया की शक्ति ब्रह्म से बड़ी है, वह चेतन ब्रह्म को जड़ बना देती है, आनन्द से भरपूर ब्रह्म को दुःख के सागर में ध्वस्त कर देती है। ऐसा मानने से तो यही कहना पड़ेगा कि ब्रह्म की नहीं माया की पूजा होनी चाहिए; जो बड़ा है उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

आजकल हमने यही बात समझ रक्खी है कि माया की पूजा को ही धर्म बना रक्खा है। पंचवर्षीय योजनाएँ बनती हैं, बाँध बनते हैं, पुल बाँधते हैं, सड़कें, यन्त्रगृह सब माया की पूजा के लिए। विश्वास कर लिया हमने कि माया ही सबसे बड़ी है, उससे बड़ा और कुछ नहीं।

एक व्यक्ति का विवाह हो गया। वह अपने घर में रहने लगा। घर में कुछ छोटे-छोटे सफेद चूहे थे। एक दिन एक मोटा चूहा एक छोटे सफेद चूहे को खा गया। उस व्यक्ति ने समझा यह मोटा चूहा ही शक्तिशाली है, इसकी पूजा करनी चाहिए। वह उसे खिलाने-पिलाने लगा। परन्तु एक दिन उसने देखा कि एक बिल्ली आ गई। चूहा उसको देखते ही बिल में जा घुसा। वह बिल्ली की पूजा करने लगा। एक दिन बिल्ली एक कुत्ते को देखकर भाग गई। उसने समझा कुत्ता ही बड़ा है, कुत्ते की पूजा करने लगा। परन्तु एक दिन घर में आया तो देखा कि कुत्ता आगे-आगे भागा जाता है, उसकी पत्नी हाथ में झाड़ू लिये पीछे भाग रही है। उसने समझा मेरी पत्नी बड़ी है, उसकी पूजा करने लगा। परन्तु यह तो पूजा करने की विधि नहीं। पूजा करनी है तो उसकी करो जो सबसे बड़ा है। पहले उसे जानो, फिर उसका पल्ला पकड़ लो। मैं पंचवर्षीय योजनाओं, पुलों और यन्त्रगृहों का विरोध नहीं करता, केवल यह कहता हूँ कि इनकी पूजा को धर्म न बना लो। इनकी पूजा करने से सच्ची शान्ति नहीं मिलेगी, सच्चा सुख नहीं मिलेगा। यह सब तो माया है, जड़। इसकी अपनी कोई शक्ति नहीं। जगद्गुरु शंकराचार्य ने उसे ईश्वर की शक्ति कहकर

और फिर उसे जड़ और दुःखवाली कहकर स्वयं अपनी ही समझ से अन्याय किया है।

वास्तविकता यह है कि ब्रह्म अलग है, प्रकृति अथवा माया अलग और जीवात्मा दोनों से भिन्न।

'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहने का अधिकार केवल उसको मिलता है जिसने चार प्रकार के साधनों से अपने-आपको बड़ा बना लिया है। ब्रह्म का अर्थ ही बड़ा है। परन्तु ब्रह्म यदि बड़ा है तो स्पष्ट है कोई उससे छोटा भी होना चाहिए। किसी व्यक्ति का एक ही बेटा हो तो उसे कोई बड़ा नहीं कहता। यह बेटा बड़ा बनेगा उस समय, जब उसका कोई छोटा भाई उत्पन्न हो जाये। तब एक छोटा होगा, दूसरा बड़ा। ब्रह्म का अर्थ ही यह है कि उससे छोटा भी कोई है, और वह छोटा है आत्मा या जीव। यदि आत्मा न हो तो ब्रह्म को ब्रह्म कहना ही अशुद्ध हो जायेगा। जो लोग कहते हैं कि यह सब ब्रह्म है, उनसे पूछो कि यदि यह सब ब्रह्म है, तो फिर छोटा कौन है? किसी की अपेक्षा से तुम उसको ब्रह्म कहते हो। यदि इस बात का उत्तर नहीं दे सकते तो फिर वेद की बात मानो। देखो! सदा से तीन वस्तुएँ वर्तमान हैं, एक प्रकृति जो जड़ है, दूसरा आत्मा जो छोटा है, तीसरा परमात्मा जो सबसे बड़ा है, इसलिए ब्रह्म है।

कुछ और लोग माया के सम्बन्ध में एक और बात कहते हैं। मकड़ी का उदाहरण देकर बताते हैं कि जिस प्रकार मकड़ी चेतन होते हुए भी अपने शरीर से जाला निकालकर अपने चहुँ ओर इस जड़ जाले को तान लेती है, इसी प्रकार चेतन ब्रह्म भी जड़ शक्ति को उत्पन्न करके उसे सब ओर फैला देता है। वितण्डावाद के लिए यह बात अच्छी प्रतीत होती है, परन्तु तर्कवादी यह नहीं सोचते कि मकड़ी का एक शरीर है, एक जड़ शरीर, उससे यह जाला निकालती है। जाला भी जड़ है। परन्तु ईश्वर का तो कोई शरीर नहीं, उसके अन्दर कुछ भी जड़ नहीं, फिर यह जड़ माया उसके भीतर से उत्पन्न कैसे होगी? वास्तविकता यह है कि प्रकृति कभी उत्पन्न हुई नहीं, सदा से

बहुत अन्तर नहीं। महर्षि ने वेद को संसार के समक्ष रक्खा, जगद्गुरु ने केवल वेदान्त को, वेद के अन्तिम भाग उपनिषदों को।

वेद का यह अन्तिम भाग अथवा वेदान्त वेद से भिन्न नहीं, इससे उलटा भी नहीं। वेदान्त बताता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है। वेद इस बात को अधिक विस्तार से कहता है। वह सूर्य को वाणी देता है, उससे कहलवाता है—मेरे अन्दर जो शक्ति है वह उसी की शक्ति है, मेरे भीतर जो प्रकाश है वह उसी का है, मेरे पास मेरा कुछ भी नहीं, यह सब तो ब्रह्म का है। वह नदियों को पानी देता है, उनसे कहलवाता है—सुनो ऐ संसार के लोगो! हमारे अन्दर कोई शक्ति नहीं, शक्ति केवल ईश्वर की है। प्रत्येक वस्तु में ईश्वर को दिखाकर वह कहता है—माया के अन्दर मायावाले को देखो, उसकी शक्ति को देखने के पश्चात् मनुष्य तुरन्त पुकार उठता है—

रोशन हैं मेरे जलवे, हर एक शै में लेकिन,
है चश्म कोर तेरी, क्या है कुसूर मेरा।

यह है वेद और वेदान्त का सच्चा स्वरूप। इसके पश्चात् भी जो लोग समझ नहीं सकते, उनसे पूछिये कि सारा वेदान्त तो ब्रह्म को प्राप्त करने के साधनों और उपायों से भरा हुआ है। ब्रह्म-प्राप्ति का दूसरा नाम ही वेदान्त है और यदि हम सब ब्रह्म हैं तो फिर ब्रह्म को प्राप्त करने का क्या अर्थ है? मैं तो मैं हूँ। अपने-आपको मैं नहीं खोजता, फिर ब्रह्म को खोजने का क्या अर्थ हुआ? यही कि मैं ब्रह्म नहीं हूँ, उसे खोज लूँ तो भी ब्रह्म कभी नहीं बन सकता। एक सहस्र दो सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरु शंकराचार्य ने "अहं ब्रह्म"—मैं ब्रह्म हूँ—ऐसी बात कही थी। तब से आज तक लाखों व्यक्तियों ने यह बात कही, परन्तु उनमें से एक भी ब्रह्म बन गया हो, ऐसा तो ज्ञात नहीं होता।

परन्तु श्री शंकर को उस समय की नास्तिकता को दूर करने के लिए 'एक आत्मा है' यही सिद्ध करना था, इसलिए प्रत्येक प्रकार की

युक्ति देते चले गये। यह नहीं देखा कि उन्हीं की युक्ति स्वयं उनका खण्डन करती है।

ओ३म् शुभम् !

सातवाँ दिन

[पूज्य महात्मा श्री आनन्द स्वामी जी सरस्वती ने अपने सातवें दिन के व्याख्यान में जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैतवाद और महर्षि दयानन्द सरस्वती के त्रैतवाद की तुलना करते हुए और दोनों वादों में समता पर तर्क जारी रखते हुए कहा—]

प्यारी माताओ और सज्जनो !

'ब्रह्मसूत्र' के पहले अध्याय के पहले पाठ में लिखा है, 'अच्युत ग्रन्थमाला, काशी' द्वारा प्रकाशित 'ब्रह्मसूत्र' का भावार्थ यहाँ दिया जाता है, "उस श्रुति में आनन्द है, जीव से भिन्न है, ऐसा कहा है और आनन्द परमात्मा ही है, जीव नहीं।" यहाँ परमात्मा और जीवात्मा दोनों अलग मान लिये गये हैं।

ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को आनन्द नहीं होता। यह वे मानते हैं, तो स्पष्ट है ईश्वर के अतिरिक्त कुछ और भी है। क्या है वह और ? जीवात्मा है वह। वे 'ब्रह्मसूत्र' को मानते थे; उसे छोड़ नहीं सकते थे। इसी प्रकार के कई और सूत्र भी हैं जिनसे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि जीवात्मा भिन्न है और परमात्मा भिन्न है। सत्य बात तो यह है कि महर्षि व्यास जिन्होंने 'ब्रह्मसूत्र' को लिखा, ईश्वर और आत्मा दोनों को भिन्न मानते थे। जगद्गुरु ने देखा नहीं कि जिस ग्रन्थ को वे अपने सिद्धान्त का आधार बनाना चाहते हैं वही उ

सिद्धान्त का विरोध करता है ; और फिर उपनिषदों का भाष्य करते समय बृहदारण्यक उपनिषद् के तीसरे प्रपाठक में पहुँचकर तो वे जैसे विवश हो गये। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि जो जीव आत्मा से अलग है, जिसको जीवात्मा नहीं जानता, जीवात्मा जिसका शरीर है।

(बृहदारण्यक ३ । ७ । २२)

इतनी स्पष्ट और सरल बात है यह कि श्री शंकर इसे किसी भी प्रकार बदल नहीं सके। इसलिए उन्हें अपने भाष्य में नीचे टिप्पणी देनी पड़ी, लिखना पड़ा कि यह भेद उपाधि से है, जैसे घड़े के आकाश और महाप्रकाश में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, वास्तव में है नहीं। यह घड़े का आकाश और महाआकाश मैं भी मानता हूँ। दोनों एक हैं, दोनों में अन्तर नहीं। परन्तु यह कहाँ लिखा है कि घड़े के आकाश में एक और आकाश भी है, जो आकाश को नहीं जानता ? सत्य बात यह है कि घड़े के आकाश और महाआकाश की यह सारी बात केवल वितण्डावाद है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। और फिर 'ब्रह्मसूत्र' के एक और सूत्र में स्पष्ट लिखा है, "हृदय की गुहा में दो आत्मा निवास करते हैं—एक परम ज्योतिष्मान् है, दूसरा उनका दर्शन करता है। यदि ये दोनों आत्मा एक ही हैं तो दर्शन कौन करता है ?" दर्शन करने का सीधा-सा अर्थ यह है कि दर्शन करनेवाला भिन्न होना चाहिए, दर्शन देनेवाला भिन्न। एक प्रेमी होना चाहिए, दूसरा प्रीतम। एक भक्त होना चाहिए, दूसरा भगवान्। दोनों हों तभी कार्य चलता है, नहीं तो नहीं चलता ; और दोनों के साथ माया हो, प्रकृति हो, तो यह संसार बनता है, नहीं तो नहीं बनता।

ये हैं वेदान्त के विशाल वन की बातें। कुछ बातें आपको शुष्क प्रतीत होंगी परन्तु जगद्गुरु शंकराचार्य के पश्चात् आनेवाले लोगों ने वेदान्त को तर्कवाद के जिस मार्ग पर चला दिया, उसकी वर्तमान में ये बातें आवश्यक भी तो हैं। सीधी-सी बात यह है कि चार प्रकार के साधनों को पूरा करने और योग के आठ अंगों को पूर्ण करने के पश्चात् आत्मा जब मुक्त हो जाता है, तब वह अग्नि में पड़े गोले के

"बादरायण (महर्षि व्यास) के मत में ब्रह्म और जीव की भिन्नता निश्चित रूप से है। मुक्त अवस्था में भी जीव की भिन्नता बनी रहती है।"

इससे आगे चलकर डॉक्टर सर राधाकृष्णन लिखते हैं कि, "यह जगत् मिथ्या नहीं है, न ही इसका ढाँचा स्वप्न के समान है। यह अपनी विशेषता रखता है। इसका जन्म, प्रकृति और लय, ब्रह्म पर आश्रित है।"

इसके साथ ब्रह्मसूत्रों के सम्बन्ध में डॉ० थीबो की बात भी सुनिये। डॉ० थीबो ने वेदान्तदर्शन शंकर-भाष्य का अंग्रेज़ी में बहुत सुन्दर अनुवाद किया है। वही डॉ० थीबो लिखते हैं—"ब्रह्मसूत्रों की शिक्षा के सम्बन्ध में मेरी स्पष्ट सम्मति है कि वे पर और अपर ब्रह्म-ज्ञान में कोई भेद नहीं रखते। न ही उनमें कहीं पर शंकर के अर्थों में ब्रह्म और ईश्वर भिन्न हैं। ये सूत्र जगत् को मिथ्या नहीं मानते, और न ही जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं। इसी प्रकार डॉ० दासगुप्ता ने भी 'शंकर-भाष्य' के सम्बन्ध में ऐसा ही लिखा है।

फिर इस बात पर भी विचार कीजिए कि वेदान्तदर्शन के चार अध्यायों में ब्रह्म का स्वरूप कहा है। ब्रह्म, जीव और जगत् के परस्पर सम्बन्ध में वेद और उपनिषद् के वाक्य दिये हैं। दूसरे अध्याय में यह बताया है कि जगत् ब्रह्म पर किस प्रकार आश्रित है और किस प्रकार इसका विकास हुआ है, तथा किस प्रकार इसका लय होता है। तीसरे अध्याय में ब्रह्म की प्राप्ति के साधनों पर विचार है। यदि सब ब्रह्म

ही हैं तो फिर ब्रह्म की प्राप्ति के साधनों की क्या आवश्यकता? तीसरे अध्याय में पुनर्जन्म पर भी प्रकाश डाला है। चौथे अध्याय में ब्रह्म-प्राप्ति के फल की ओर संकेत है। मुक्ति के स्वरूप का भी वर्णन है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपनिषदों में कुछ स्थल ऐसे आये हैं जहाँ एकता का वर्णन है। ईशोपनिषद् के सातवें मन्त्र में 'एकत्व-मनुपश्यतः" लिखा है, परन्तु अद्वैत पद नहीं लिखा। एकत्व में और अद्वैत में बड़ा अन्तर है और एकता का वर्णन मनुष्य की विशेष अवस्था से सम्बन्ध रखता है। जैसा कि अथर्ववेद में एक मन्त्र आया है जिसका अर्थ है—ऐ वायु! मुझे उन्मत्त कर दे। हे अन्तरिक्ष! तू भी मुझे पागल बना दे। ऐ अग्नि! तू भी मुझे प्रेम-उन्मत्त बना दे और उसे (परमात्मा को) भी मेरे लिए विकल कर दे।

बात है भी ठीक। प्रेमाग्नि दोनों ओर से जलनी चाहिए। कहा भी है—

उलफ़त[1] का तब मजा[2] है, दोनो हों बेक़रार[3]।
दोनों तरफ़ हो आग बराबर लगी हुई॥

जब प्रेम पूर्ण हो जाता है तब 'मैं' मिट जाता है और तू ही तू रह जाता है, तब ऐसे प्रेमी भक्त को संसार के प्रत्येक पदार्थ में उसी के दर्शन होने लगते हैं और वह कह उठता है—

गुलशन[4] में सबा[5] को जुस्तजू[6] तेरी है।
बुलबुल की जबाँ पर गुफ्तगू[7] तेरी है॥
हर रंग में है जलवा[8] तेरी कुदरत का।
जिस फूल को सूँघता हूँ बू तेरी है॥

सचाई भी यही है। जब वह सर्वव्यापक है, जब प्रत्येक पदार्थ [illegible] है तब निराकार होता हुआ भी चित्रयुक्त बन जाता है,

हमें हर चीज में आई नजर या रब अदा तेरी।
वो कैसे होंगे जिन लोगों ने तुझको बेनिशाँ पाया।।

हाँ-हाँ, हर पत्ते में, प्रत्येक फूल में, प्रत्येक शून्य में उसी की माया, उसी का सौन्दर्य—

तेरी बेमिस्ल[1] कुदरत का हर इक पत्ते में दफ्तर है।
तेरा देखा है सिक्का सन्त[2] हमने दाने दाने में।।

सो स्वयं अहंकार करने की अपेक्षा उसी प्रीतम का दर्शन प्रत्येक स्थान पर करो। अथर्ववेद में लिखा है—

उसी को बड़ा मानता हूँ जिससे सूर्य उदय और अस्त होता है। उसके अतिरिक्त और कोई बड़ा (ब्रह्म) नहीं है।

हाँ, ब्रह्म तो एक ही है, हम सब जीव छोटे हैं और अनेक हैं। छोटे को नम्रता ही धारण करनी चाहिए और बड़े से नित्य शक्ति और भक्ति माँगनी चाहिए। दोनों जगद्गुरुओं के उपदेश की गम्भीरता में एक ही बात है। संसार बिगड़ चुका है। जगद्गुरुओं के अनुयायी मिलकर बिगड़े संसार को सुधारने के लिए कटिबद्ध हो जायें, तो अशान्त संसार को भय, लोभ और क्रोध की भड़कती अग्नि से बचने का कुछ समय भी मिल जायेगा।

ओ३म् शुभम्!

□□